ओशो

ओशो की मौजूदगी का जादू

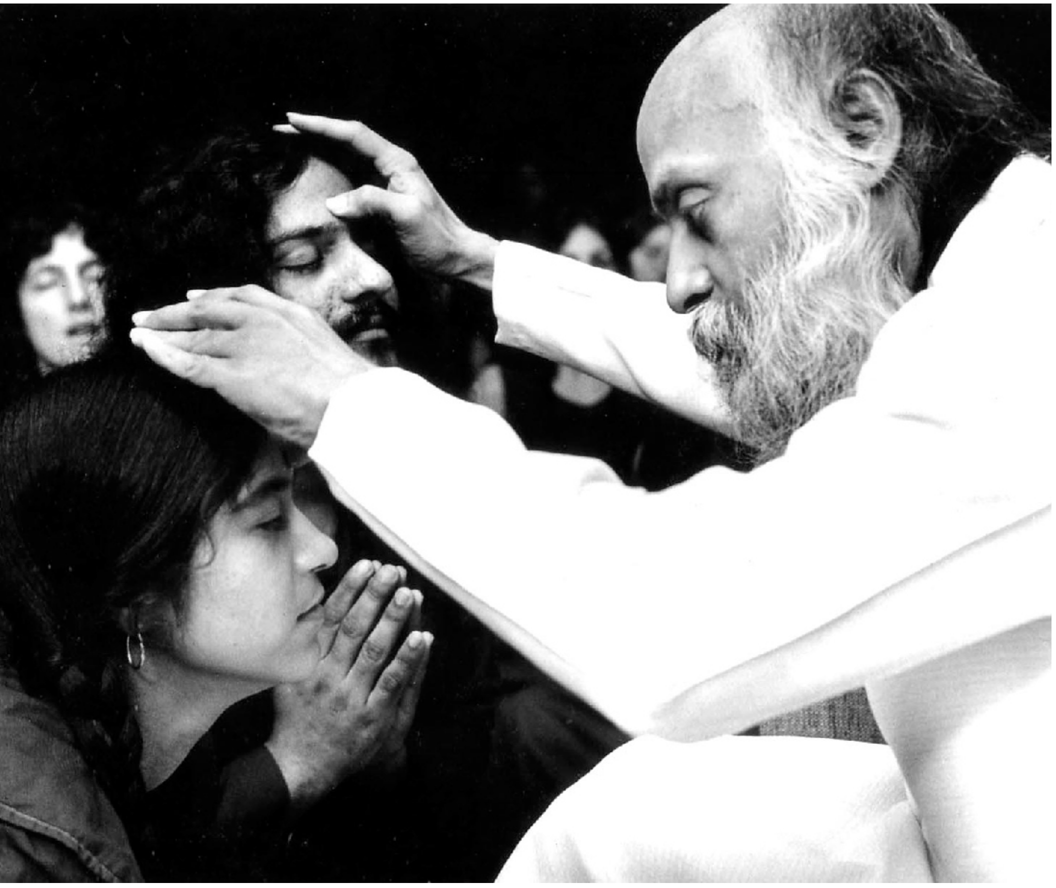

परमगुरु ओशो के श्रीचरणों में
अहोभाव के साथ समर्पित

स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती

ओशो फ्रैगरैंस

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिला: सोनीपत, हरियाणा
131021

contact@oshofragrance.org
www.oshofragrance.org

Rajneeshfragrance

+91-7988229565
+91-7988969660
+91-7015800931

अनुक्रम

अध्याय	विषय	पृष्ठ
1.	ओशो की मौजूदगी का जादू	5
2.	जिन खोजा तिन पाइयां	33
3.	धर्म और मनोकामनाएं	53
4.	ज्ञान की व्यर्थता	77
5.	ईश्वर दुखदायी क्यों है?	105
6.	संन्यास दीक्षा और आश्रम व्यवस्था	113
7.	साक्षी से समाधि की ओर	126

ओशो की मौजूदगी का जादू

प्यारे मित्रो, सत्संग के सत्र में आप सबका स्वागत करता हूं।

प्रथम प्रश्न- 1986 में नेपाल प्रवास के दौरान ओशो ने कहा- बी ओपन एंड वल्नरेबिल, एंड आई विल बी एवेलेबिल टू यू, दिस इज माई प्रॉमिस। ठीक इसी प्रकार 1970 में उन्होंने एक फोटोग्राफ के ऊपर लिखा था- समर्पण करो और मैं तुम्हें रूपांतरित करूँगा। यह मेरा आश्वासन है। कृपया समझाएं कि इसका क्या अभिप्राय है?

—स्वामी प्रेम विनोद

सद्‌गुरु कुछ नहीं करते, शिष्य का समर्पण भाव ही सब कुछ करता है। समर्पण में रूपांतरण की कीमिया छिपी है। यह नहीं सोचना की गुरु कुछ करते हैं। गुरु तो सिर्फ माध्यम

हैं। परमात्मा के द्वारा गुरु के माध्यम से कुछ होता है। वे सिर्फ कैटेलिटिक एजेंट, उत्प्रेरक हैं। कैमिस्ट्री में तुमने पढ़ा होगा कैटेलिटिक्स के बारे में। उनकी मौजूदगी में रासायनिक क्रिया घटित होती है। वे स्वयं कैमिकल रिएक्शन में भाग नहीं लेते।

ठीक इसी तरह जो व्यक्ति समर्पण करेगा, ओपन और वल्नरेबिल होगा; निश्चित ही उसके भीतर रूपांतरण घटित होगा। इसका आश्वासन दिया जा सकता है। यह बात प्रॉमिस की जा सकती है। जब भी कभी ऐसा होगा कि कोई व्यक्ति शिष्य भाव में, श्रद्धा और समर्पण भाव में, अपने हृदय को खोलेगा तो उसके भीतर रूपांतरण की प्रक्रिया घटनी शुरू हो जाएगी। सच पूछो तो सद्‌गुरु नहीं, यह समर्पण की भावदशा ही चमत्कार करती है और इसलिए आश्वस्त हुआ जा सकता है कि जब भी किसी हृदय में ऐसा घटेगा वहां रूपातंरण होना शुरू हो जाएगा। सद्‌गुरु ओशो का यह वचन स्मरणीय है- 'सरेन्डर, एण्ड आई विल ट्रान्सफार्म यू, दिस इज माई प्रॉमिस।'

चार तलों पर इस बात को समझें। या तो हम गुरु के साथ चेतन मन से जुड़ सकते हैं- कॉन्शस माईन्ड से। तब हम केवल बौद्धिक रूप से ही जुड़ पाते हैं, बस तार्किक ढंग से, एक विद्यार्थी के रूप में। जुड़ने का दूसरा तल होता है- सबकॉन्शस माईन्ड, अचेतन मन। वहां हम प्रेमपूर्वक जुड़ते हैं। सिर्फ बुद्धि और तर्क-वितर्क से नहीं, केवल उनकी बातें ही पसन्द नहीं आतीं, बल्कि अब उनके प्रति हृदय में एक लगाव पैदा हो गया, प्रेम उत्पन्न हो गया। यह थोड़ा गहरा जुड़ना हुआ। तीसरे तल का जोड़ है- अचेतन मन का, अनकॉन्शस माईन्ड का। जहाँ हम पूरी तरह अपना हृदय खोल देते हैं और समर्पित हो जाते हैं। अब जो गुरु कहे, वह हम करने को राजी हैं। हम कहते हैं- जो तेरी मर्जी। जैसा तू चाहे वैसा कर। जो तुझे भाए, वह हम करने को राजी हैं। यह और गहरा जुड़ना है। इसके बाद एक और जुड़ना है, अचेतन से भी ज्यादा गहरा, तुरीय अवस्था का जुड़ना। वह सर्वाधिक गहरा है। उस पर हम आगे विमर्श करेंगे।

जो व्यक्ति अपने अचेतन मन से जुड़ गया, वह ओपन और वल्नरेबिल हो गया, वह समर्पित हो गया। अब गुरु उसके ऊपर कार्य कर सकते हैं। लेकिन यह भाषा की मजबूरी है कि 'कार्य' शब्द का उपयोग करना पड़ रहा है। सचमुच में वह कोई कार्य नहीं है। सद्‌गुरु की उपस्थिति मात्र ही काम करती है।

सद्‌गुरु की उपस्थिति के संबंध में कुछ और प्रश्न हैं। उस सम्बन्ध में चर्चा करते हुए आपको बात और स्पष्ट हो जाएगी।

प्रश्न-2 भगवान बुद्ध ने शरीर छोड़ते समय वचन दिया कि बुद्ध पूर्णिमा के दिन एक खास वक्त पर, खास जगह पर पाँच सौ भिक्षु इकट्‌ठे होकर प्रार्थनापूर्ण हृदय से उन्हें स्मरण करेंगे तो बुद्ध प्रकट होंगे और अपना संदेश देंगे। ठीक इसी प्रकार ओशो ने कहा है कि जहाँ मेरे पाँच संन्यासी मौजूद मिलेंगे, वहाँ मेरी उपस्थिति महसूस की जा सकेगी। इसका अभिप्राय समझाएं।

निश्चित ही, सद्‌गुरु की उपस्थिति वही लोग महसूस कर सकते हैं जो उनके प्रति खुले-हृदय वाले हैं। जो समर्पित भाव से जुड़े हुए हैं। ओशो का यह आश्वासन की जहाँ मेरे पाँच मित्र मिलेंगे, पाँच संन्यासी इकट्‌ठे होंगे... लेकिन याद रखना संन्यासी कौन है? मिलन का अर्थ क्या है? संन्यास की परिभाषा क्या है?

'निर्वाण उपनिषद्' में सूत्र है कि संन्यासी वह है जिसने प्रणव को जाना, अनाहत नाद जिसका मंत्र हो गया। उपनिषद् का ऋषि कहता है कि जो ओंकार में डूब गया वही संन्यासी है। ओशो ने बड़ी सुन्दर व्याख्या निर्वाण उपनिषद के चौदहवें प्रवचन में की है कि अनाहत नाद जिनका मंत्र है, केवल वही वास्तव में संन्यासी है। ओशो जब कहते हैं जहाँ मेरे पाँच

संन्यासी इकट्ठे होंगे, वहां याद रखना संन्यासी का मतलब वह नहीं जिसने माला पहन ली, केवल कपड़े बदल लिए, नाम परिवर्तन कर लिया। कपड़े बदलने से क्या होगा? कबीर कहते हैं-

'मन न रंगाए जोगी, कपड़ा रंगाए।
मन न फिराए जोगी, मनका फिराए।।'

तन पर वस्त्रों के रंग बदलने से कुछ न होगा, भीतर मन का रूपातंरण होना चाहिए। भीतर अनाहत नाद गूंजे, तब तुम संन्यासी कहलाने योग्य हुए। उपनिषद् की यही परिभाषा है संन्यासी की। इस पृष्ठभूमि में अब ओशो के वचन को समझें। वे कहते हैं कि जहाँ मेरे पाँच संन्यासी मिलेंगे... केवल 'इकट्ठे होंगे' नहीं कहा, मिलन जरा हार्दिक बात है... वहाँ मेरी उपस्थिति महसूस की जा सकती है। उनकी उपस्थिति किस रूप में होगी? स्थूल और सूक्ष्म दो हिस्सों में समझाना चाहूँगा। स्थूल रूप से उनकी उपस्थिति उत्सव रूप में होगी- सैलिब्रेशन। ओशो ने हमें आनंद-उत्सव सिखाया। बंगाल के चंडीदास के शब्दों में-

'उत्सव आमार जाति, आनन्द आमार गोत्र।'

जहाँ पाँच भक्त मिलेंगे, निश्चितरूपेण वहाँ उत्सव का माहौल होगा। आनन्दपूर्ण परिस्थिति होगी। ओशो की उपस्थिति वहाँ आनन्द रूप में, उत्सव रूप में, प्रेम रूप में अनुभव होगी। ओशो ने शाम के सत्संग को जो नाम दिया है 'ओशो व्हाइट रोब ब्रदरहुड'। याद रखना अंतिम शब्द- ब्रदरहुड यानी भाई चारा। यदि भाईचारा नहीं है तो फिर गुरुभाइयों का, साधकों का मिलन न हुआ। पंजाब में एक जगह मैं गया था, कुछ मित्रों ने एक छोटा-सा कम्यून बसाया है। दस-बारह मित्र वहां मकान बनाकर रहते हैं। जब मैं पहुँचा तो उनकी मीटिंग चल रही थी और भारी वाद-विवाद चल रहा था। कम्यून के व्यवस्था संबंधी कुछ पहलुओं को लेकर आपस में काफी तनातनी थी, गर्मागर्म वातावरण था। कुछ अपशब्दों का भी प्रयोग उन्होंने आपस में किया। मीटिंग के तुरंत बाद पौने सात बजे वे व्हाइट रोब ब्रदरहुड करने को तैयार

हुए। मैं भी उसमें शामिल हुआ। व्हाइट रोब जैसे ही खत्म हुआ, रात डिनर का प्रोग्राम था। सभी मित्र इकट्ठे बैठकर खाना खाए। भोजन के दौरान फिर लड़ाई-झगड़ा शुरू हो गया। गर्मागर्म बातचीत होने लगी। जब मैं वहाँ से विदा ले रहा था तब उन्होंने मुझसे पूछा कि स्वामी जी, ओशो व्हाइट रोब ब्रदरहुड आपको कैसा लगा हमारे कम्यून में? मैंने कहा- माफ कीजिए, इसमें से ओशो शब्द और ब्रदरहुड शब्द भी हटा दीजिए। न तो ओशो की उपस्थिति थी, न कोई ब्रदरहुड था। ज़रा भी भाईचारा न था। शुरूआत से ही लड़ाई-झगड़ा, ईर्ष्या और द्वेष था और अंत में भी वही भावदशा थी। मैं मान नहीं सकता कि बीच में घंटे भर के लिए ब्रदरहुड हो गई हो। केवल सफेद कपड़े पहनने से ब्रदरहुड थोड़े हो जाएगी। एक प्रेमपूर्ण हृदय, समर्पित हृदय चाहिए। भाईचारे की सद्भावना चाहिए। मैंने उनसे कहा कि आप इतना ही कहें- व्हाइट रोब। ओशो नाम न जोड़ें, ब्रदरहुड भी न जोड़ें। सिर्फ व्हाइट रोब कहें। हां, व्हाइट रोब खूब अच्छे थे, आप लोगों के कपड़े अच्छे थे, रंग भी खूब अच्छा था कपड़ों का- बिल्कुल व्हाइट। केवल व्हाइट रोब ही रह गया है। ऐसे माहौल में ओशो की उपस्थिति कैसे महसूस होगी?

ओशो का वचन तो बिल्कुल ठीक है, लेकिन उसको ठीक-ठीक अर्थ में पकड़ना, संन्यास और मिलन की परिभाषा को समझना। जिसने अनहद नाद को जाना, अनाहत जिसका मंत्र हुआ, वह संन्यासी- निर्वाण उपनिषद में ऐसा ओशो ने समझाया है। और जब तक शिष्यों में गुरुभाई की भावना न हो, प्रेम का नाता न हो आपस में, तब तक ओशो व्हाइट रोब ब्रदरहुड तो नहीं हुआ! केवल व्हाइट रोब, सफेद चोगे!!

सभी धर्मों की शुरुआत बहुत गहरी और सूक्ष्म बातों से होती है मगर दुर्भाग्य कि अन्ततः वे बहुत ही स्थूल बातों पर आकर समाप्त हो जाते हैं, क्रियाकाण्डों में उलझकर रह जाते हैं। मैं बहुत जगह शिविर लेने जाता हूँ, अलग-अलग ध्यान केन्द्रों में, आश्रमों में। कई जगह मैं देखता हूँ बिल्कुल भी ब्रदरहुड नहीं बची है और जब प्रेम ही नहीं है, तो फिर ओशो भी वहाँ

मौजूद नहीं हैं। हमने शर्त ही पूरी नहीं की। ओशो तो अपना आश्वासन पूरा करने के लिए राजी हैं। लेकिन शर्त पहले हमें पूरी करनी होगी। हम भाईचारे का एक 'स्पेस' निर्मित करें जिसमें वे अवतरित हो सकें। ओशो का आश्वासन तो बिल्कुल ठीक है, जैसे बुद्ध का आश्वासन था। किंतु यह जरूरी नहीं कि हम जिन्हें संन्यासी कह रहे हैं, वे संन्यासी हों; और जिस क्रियाकाण्ड को हम ध्यान की प्रक्रिया कह रहे हैं, उसमें वस्तुतः ध्यान घट रहा हो, सचमुच प्रेम घट रहा हो। थोड़ा गौर करना। भीतर से सूक्ष्म बात को पकड़ना। वहाँ ओशो की उपस्थिति होगी, जहाँ वास्तविक पाँच संन्यासी मिलेंगे। निश्चित रूप से वहाँ उत्सव होगा। वहाँ आनन्द होगा। जहाँ आनन्द-अतिरेक होगा, ओवरफ्लोइंग ब्लिश, उसी का नाम है प्रेम। प्रेम रूप में आशो की उपस्थिति की अनुभूति होगी।

प्रश्न-3 ध्यान के किन्हीं गहरे क्षणों में मुझे एक अद्भुत सुगन्ध का अनुभव अपनी श्वास में होता है। बार-बार मैंने इसका अनुभव किया है। एक ध्यान शिविर के दौरान प्रथम बार मैंने इस सुगन्ध को महसूस किया था। जब मैं अत्यन्त समर्पित और निर्विचार जागरूकता की अवस्था में होता हूँ तो लगता है मेरा शरीर भीतर से बिल्कुल एक खाली बाँस की पोंगरी के समान हो गया है। आँखों में नशा-सा छा जाता है, भीतर खुमारी घेर लेती है तथा शरीर इतना हल्का तथा निर्भार प्रतीत होता है कि आश्चर्य चकित हो जाता हूं। क्या इस स्थिति को भी ओशो की उपस्थिति कहा जा सकता है?

- स्वामी धर्म वेदांत

निश्चित रूप से कहा जा सकता है, स्वामी धर्म वेदान्त। यह जो आंतरिक सुवास महसूस हो रही, खुमारी छा गई, तारी लग गई, निर्भारता घटी, भीतर ऊर्जा जागी... से सारे लक्षण देह से तादात्म्य छूटने के हैं। देह

पदार्थ से निर्मित है, चैतन्य-ऊर्जा का तो कोई वजन होता नहीं। इसलिए ऊर्जा की अनुभूति हमेशा वेटलैशनेस में, भारहीनता के अनुभव में ले जाती है। जब तुमने ऊर्जा को जाना, भीतर की पवित्र सुगंध को महसूस किया, तुम अनोखे नशे में झूमने लगे... यह अंगूर की ढली नहीं, आत्मा से निचोड़ी शराब है... निश्चित रूपेण यही सद्गुरु की उपस्थिति के लक्षण हैं। वे सद्गुरु, जो देहातीत परमात्मा स्वरूप हो गए हैं, सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो गए हैं। उत्सव, आनन्द और प्रेम थोड़ी स्थूल बातें हैं। दिव्य सुगंध, खुमारी, निर्भारता: ये और भी सूक्ष्म अनुभूतियां हैं।

भागवत स्वरूप हो चुके परमगुरु की उपस्थिति दो सूक्ष्म रूपों में और आसानी से की जा सकती है। वे हैं- प्रकाशमय और ध्वनिमय रूप। आगे के प्रश्न में उसकी चर्चा होगी।

प्रश्न-4 सद्गुरु किस भांति अपने शिष्यों को उपलब्ध होते हैं? कृपया समझाएं। उन्होंने अनेक बार कहा है कि इस शरीर से मुक्त होकर मैं पहले से भी ज्यादा तुम्हें उपलब्ध हो जाऊँगा। उनकी उपस्थिति किस भांति अनुभव की जा सकती है?

सर्वाधिक सूक्ष्म ओंकार के संगीत रूप में। यह सिर्फ ओशो की ही बात नहीं, सभी सद्गुरुओं के संबंध में सच है। जब वे देह त्याग देते हैं तो देह रूपी पिंजड़े के भीतर जो आलोकमय ओंकार रूपी चैतन्य पक्षी बन्द था, वह मुक्त हो जाता है शरीर की सीमा से। और तब वह सर्वव्यापी ओंकार-नाद व जागतिक दिव्य-नूर के साथ एकात्म हो जाता है। तब सद्गुरु परमात्मामय हो जाते हैं। जब देह में थे तो एक सीमा थी, एक आकार था, एक विशेष रूप था; अब वह रूप खो गया, सीमा भी विलीन हो गई। सच पूछो तो ओशो ने अपना जो नाम चुना है, वह ओशनिक

एक्सपीरियेन्स यानी सागरीय अनुभव से लिया है। वह व्यक्ति बूंद की भांति अब नहीं रहा, सागर की तरह हो गया, फैलकर विराट हो गया। बूंद की तो एक छोटी सी सीमा थी। अब वह सीमा खो गई। कोई रूप, कोई आकृति न रही। बूंद, बूंद न रही, सागर हो गई। पूरे सागर में उस बूंद की उपस्थिति महसूस की जा सकती है। अब वह सर्वव्यापक हो गई– 'ओमनी प्रेजेन्ट' यानी ओम की तरह प्रेजेन्ट। पंतजलि योग सूत्र पर बोलते हुए प्रवचन नं 15, 16, 17 और 18 में स्वयं ओशो ने इस सम्बन्ध में कुछ बातें कही हैं। विशेष रूप से उन्होंने उल्लेख किया है कि देह छोड़ने के बाद सद्‌गुरु की क्या स्थिति होती है।

तीन बातें समझ लें। एक तो शिक्षक–विद्यार्थी का सम्बन्ध होता है। दूसरा गुरु–शिष्य का सम्बन्ध होता है। और तीसरा गुरु का सम्बन्ध गुरुओं के गुरु से होता है। इस प्रवचन का उन्होंने शीर्षक रखा है– 'दि मास्टर ऑफ दि मास्टर्स' 'गुरुओं के गुरु' या दूसरे शब्दों में कह लें परमगुरु। पंतजलि का सूत्र है कि देह त्यागने के बाद सद्‌गुरु गुरुओं के गुरु बन जाते हैं, वे ओंकार स्वरूप हो जाते हैं; और उनसे जुड़ने के लिए ओम का स्मरण करना चाहिए। ओम पर ध्यान दो, ओम में डूबो।

आश्चर्य की बात है, मैं इतने हजारों संन्यासी मित्रों से मिलता हूँ, और उनसे पूछता हूं कि आप ओशो की उपस्थिति किस रूप में अनुभव करने की कोशिश करते हैं? उन्हें कुछ भी पता नहीं है, इस मामले में बिल्कुल ही अंधेरा छाया हुआ है। जबकि स्वयं ओशो ने खूब विस्तार से वर्णन किया है। मैं चाहूँगा कि सभी संन्यासी मित्र ओशो के ये चार प्रवचन अवश्य पढ़ें– पंतजलि योग सूत्र भाग 1 के प्रवचन नंबर 15 से लेकर 18 तक। ताकि आपको पता हो कि आप जिस सद्‌गुरु से जुड़ने की कोशिश कर रहे हैं, अब वह कहां हैं, किस रूप में हैं, उनसे जुड़ने का अर्थ क्या है और उनसे जुड़ने की विधि क्या है? पंतजलि ने खूब अच्छे से समझाया है कि ओम को जपो, ओम पर ध्यान दो और ओम में डूबो। क्योंकि सद्‌गुरु देह त्यागने के बाद

अनहद-नाद हो जाते हैं। वे ओम् का प्रकाश हो जाते हैं। यह नाम आपने सुना होगा? हमारे मुल्क में बहुत कॉमन नाम है ओमप्रकाश। कभी आपने ख्याल नहीं किया होगा ओमप्रकाश का अभिप्राय क्या है- ओंकार की रोशनी। ओंकार के दो रूप मुख्य हैं- एक ध्वनिमय रूप, एक प्रकाशमय रूप। गोरखनाथ पर प्रवचन देते हुए 'मरौ हे जोगी मरौ' में ओशो समझाते हैं गोरखनाथ का यह प्यारा वचन-

'शब्द भया उजियाला'

वह जो भीतर शब्द गूंज रहा हैं ओंकार का, जैसे वह प्रकाशित हो जाए, ऐसी अद्‌भुत घटना घटती है। शब्द भया उजियाला। भीतर का अनाहत शब्द दो रूपों में प्रगट होता है- स्वर व उजाले की तरह। अशरीरी सद्‌गुरु भी उसी आलोकित शब्द में समा जाते हैं। कबीर ने कहा है-

बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाए?

सीमित बूंद असीमित सागर हो गई। ओशनिक एक्सपीरियेन्स हुआ, अब वह ओशो हो गई। ओंकार के सागर में समाकर स्वयं सागर हो गई। अतः सद्‌गुरु से जुड़ने के लिए शिष्य को ओंकार के श्रवण में डूबना होगा। ओंकार की साधना करनी होगी।

बहुतेरे मित्र मुझ पर आरोप लगाते हैं कि यहाँ समाधि कार्यक्रमों में जो सिखाया जा रहा है वह ओशो की देशना से कुछ हटकर है। नहीं, बिल्कुल भी हटकर नहीं है। शायद आपने ओशो को ठीक से सुना-पढ़ा नहीं। या फिर आपने ओशो को समझा नहीं। आप बिना जाने ही ओशो की अदृश्य उपस्थिति से जुड़ने का प्रयास कर रहे हो, बिना समझे कि ओशो ने क्या कहा है? यहाँ इन समाधि कार्यक्रमों में जो सिखाया जा रहा है वह ठीक ओशो की मूल देशना है।

ओशो ने 'योगाः दि अल्फा एंड दि ओमेगा' के पन्द्रहवें प्रवचन में यह भी समझाया है कि जब कोई गुरु शरीर से विदा हो जाता है तब भी वह अपने शिष्यों को मदद पहुँचाने की कोशिश करता है। पहले से भी ज्यादा

अच्छे से मदद कर सकता है। क्योंकि पहले तो वह सीमित था एक जगह, एक शरीर में। अब वह सर्वव्यापी हो गया। सारी दुनिया में काम कर सकता है, सब के ऊपर, एक साथ। क्योंकि वह समय और स्थान के पार चला गया है। ओशो ने एक उदाहरण दिया है कि गुरजिएफ की मृत्यु के बाद गुरजिएफ की परम्परा में कोई भी संबुद्ध शिष्य न हो पाया। आस्पेंस्की बुद्धत्व के बिल्कुल निकट था, लेकिन वह भी पूर्णरूप से न जाग सका। वह दूसरा जन्म लेने की प्रतीक्षा में है, लेकिन वह अभी जन्म नहीं ले पाया। शायद लम्बा वक्त लगे। तब तक के लिए गुरिजएफ की शृंखला टूट गई। गुरिजएफ की परम्परा में कोई जीवित गुरु नहीं है। ओशो ने कहा– इसलिए गुरिजएफ अपने सारे शिष्यों को मेरे पास भेज रहा है। उन शिष्यों को खुद नहीं पता होगा कि वे कैसे मेरे पास आए? उनसे पूछोगे तो वे बहुत ही स्थूल कारण बताएंगे।

समझो कोई आदमी जर्मनी से आया। उससे पूछो कि कैसे आए? तो वह कहेगा कि मैं एक बुक–स्टोर में गया था। किताबें देख रहा था। एक किताब पर छपे फोटोग्राफ को देखकर मैं आकर्षित हुआ। वह किताब मैंने उठा ली, खरीद ली। घर आकर उसको पढ़ा। वह भगवान श्री रजनीश की पुस्तक थी। पढ़कर मैं बहुत प्रभावित हुआ। मैंने पता लगाया कि यह व्यक्ति कहां रहते हैं? इस प्रकार मैं पूना आश्रम चला आया। यहां ध्यान–साधना की, खूब आनन्द आया। फिर भाव उठा संन्यास लेने का और मैं ओशो का संन्यासी हो गया हूं।

ओशो कहते हैं कि असली कहानी कुछ और है। वह व्यक्ति गुरिजएफ का शिष्य था। गुरु के देह–त्यागने तक वह अपनी मंजिल को, बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं कर सका। गुरिजएफ उसकी मदद कर रहा है। वह व्यक्ति भी नहीं जानता कि कौन उसको उस बुक–स्टोर में ले गया और उस किताब पर ही उसकी नजर क्यों पड़ी? और उस चित्र ने आकर्षित क्यों किया? गुरिजएफ उसके अन्दर से प्रेरणा जगा रहा है। सूक्ष्म जगत से निर्देश भेज रहा है। वह व्यक्ति नहीं जानता लेकिन उसे कोई मार्ग–दर्शन दे रहा है। गुरिजएफ

यह प्रयास कर रहा है कि इस वक्त धरती पर जो बुद्धपुरुष हैं उनके पास अपने शिष्यों को भेज दे। इस तरह गुरिजएफ ने अपने शिष्यों को ओशो के पास भेजा। वे गुरिजएफ की प्रेरणा से ही आए और यह कोई नई घटना नहीं है, ऐसा सदा-सदा होता रहा है।

यदि उस परम्परा में उस सद्‌गुरु के शिष्य एनलाइटैंन्ड नहीं हो पाते, अगर वह धारा आगे नहीं बहती, टूट जाती है, जैसा की महावीर के बाद जैनों की धारा टूट गई। चौबीसवें तीर्थंकर के बाद फिर कोई व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ, महावीर जिसको संदेश दे सकें, जिसके माध्यम से काम कर सकें। सिक्ख गुरुओं में दस गुरुओं के बाद धारा टूट गई। ग्यारहवां कोई मौजूद नहीं था जो प्रवाह को आगे बढ़ा सके। सभी परम्पराएं एक न एक दिन टूट जाती हैं। गुरजिएफ के तुरंत बाद ही कोई अगला व्यक्ति मौजूद नहीं था; दूसरा तीर्थंकर भी नहीं था। जैनियों के तो चौबीस तीर्थंकर हुए, सिक्खों के तो दस गुरु हुए तब धारा टूटी। गुरजिएफ ने जो काम किया, वह एकदम से अधूरा छूट गया। गुरजिएफ ने अपने शिष्यों को ओशो के पास जाने का इशारा किया। इसके बाद गुरजिएफ की जिम्मेवारी समाप्त हो जाती है। यह भी स्मरणीय है। गुरजिएफ ने अपना वह काम कर दिया जो शेष बचा था, उसने अपना वचन सूक्ष्म-लोक में पहुँच कर भी निभाया। लेकिन अब शिष्य की जिम्मेवारी है कि वह क्या करता है? हो सकता है कि वह ओशो के पास पहुँचे और फिर भी संन्यस्त न हो। उसका अहंकार बीच में आ जाए। सोचे कि मैं तो गुरजिएफ का प्रेमी हूँ, किसी अन्य का शिष्य कैसे बन जाऊँ? उसका अहंकार अगर दीवार बन जाएगा तो फिर बात न बनेगी। लेकिन तब गुरजिएफ की जिम्मेवारी समाप्त हो गई। अब गुरजिएफ इस व्यक्ति के लिए रिसपॉन्सिबल नहीं है। अब यह स्वयं अपना उत्तरदायित्व संभाले।

सभी सद्‌गुरु इस प्रकार से मदद पहुँचाते हैं। उनकी उपस्थिति ओंकार स्वरूप होती है- यह सूक्ष्म बात समझें। स्थूल बात की पहले चर्चा हो गई- उत्सवरूपी, आनन्दरूपी और प्रेमरूपी मौजूदगी। सूक्ष्मतर बात हुई

सुगन्धमय, खुमारी रूपी, निंभार-चैतन्यरूपी मौजूदगी। अति-सूक्ष्म बात पंतजलि ने कही कि देह त्यागने के बाद सद्‌गुरु प्रणव-स्वरूप हो जाते हैं। ओशो होने का यही अर्थ है। सीमित बूंद न रहे, असीम, अनंत, अरूप, निराकार, विराट सागर हो गए। स्वयं परमात्मा ओम-स्वरूप है; उसके साथ वे भी एकात्म हो गए। उस 'एक ओंकार सतनाम' में डूब गए, विलीन हो गए।

उपरोक्त प्रवचन में एक और अदभुत बात ओशो ने समझाई कि कोई भी बुद्धपुरुष नया धर्म शुरू करना नहीं चाहता। लेकिन मजबूरी की स्थिति पैदा हो जाती है। पुराने धर्म मानने वाले लोग उसे स्वीकार नहीं करते। जीसस क्राइस्ट कोई नया धर्म; ईसाई धर्म शुरू करना नहीं चाहते थे। वे स्वयं यहूदी जन्मे थे। यहूदी की भांति जीए और मरे। उनके मन में ऐसी कोई भावना न थी कि नया धर्म शुरू किया जाए। क्योंकि वे जो कुछ भी कह रहे थे, पुराने यहूदी धर्मगुरुओं की आज्ञा से ही कह रहे थे। सूक्ष्म लोक से उन्हें पुराने यहूदी पैगम्बरों से निर्देश मिल रहे थे। लेकिन संदेश समयानुसार बदल जाते हैं। युग बदलता है, लोगों की समस्याएं बदल जाती हैं, लोगों का मनोविज्ञान बदलता है। भिन्न-भिन्न देश व काल के अनुसार व्यक्तियों व परिस्थितियों को देखकर नए समाधान देने पड़ते हैं। निश्चित रूप से जीसस कुछ ऐसी बातें कह रहे थे जो पुराने यहूदी पैगम्बरों ने नहीं कहीं। लेकिन वही पैगम्बर जीसस से कहलवा रहे थे कुछ नई बातें। क्योंकि जीसस का समय आते-आते बात बहुत बदल गई। हजरत मूसा जब हुए थे, तब खूंखार और जंगली किस्म के लोग थे, बहुत बर्बर, आदिम। उस समय ईश्वर की जो धारणा थी बड़ी ईर्ष्यालु और हिंसक किस्म की धारणा थी। पुरानी बाइबिल कहती है कि परमात्मा तुम्हारा चाचा नहीं लगता। ईंट का जवाब पत्थर से देगा। तुम एक आँख फोड़ोगे किसी की वह तुम्हारी दोनों आँखें फोड़ देगा। अनंत काल तक नर्क में सड़ाएगा। अंतहीन तड़फाएगा। परमात्मा तुम्हारा चाचा नहीं है कोई... ऐसा था पुरानी बाइबिल का ईश्वर, शैतान जैसा। और

जीसस कहने लगे कि परमात्मा प्रेम है। गॉड इज लव। परमात्मा करुणावान है, अगर तुम प्रायश्चित करो, वह तुम्हें क्षमा कर देगा। यह तो बात बिल्कुल विपरीत हो गई। लेकिन मूसा जिन लोगों से बात कर रहे थे; वे केवल हिंसा की भाषा समझ सकते थे। वे बड़े खूंखार, जंगली, असंस्कृत किस्म के लोग थे। जीसस का समय आते-आते थोड़ी सभ्यता विकसित हुई। लोग ज़रा प्रेमपूर्ण हुए, थोड़ी चेतना का विकास हुआ। तब इनको डराने की जरूरत न रही। इनको प्रेम से समझाया जा सकता है कि परमात्मा करुणावान है। कोई बात नहीं... तुमसे भूलचूक हो गई, ठीक; तुम क्षमा मांग लो। वह क्षमा कर देगा। लेकिन यहूदियों को लगा कि ईसा उनके ग्रंथ के खिलाफ बोल रहे हैं।

ओशो ने समझाया है कि माना ईसा धर्मग्रन्थ के तो खिलाफ बोल रहे हैं लेकिन मूसा और अन्य पैगम्बरों की आज्ञा से ही बोल रहे हैं। वे सूक्ष्म लोक से जो निर्देश दे रहे हैं, जीसस उन्हीं का पालन कर रहे हैं; कोई नई बात अपनी तरफ से नहीं कह रहे हैं। लेकिन जो पण्डित हैं, पुरोहित हैं, यहूदी धर्म के रबाई हैं, वे कैसे मानेंगे? वे कहेंगे कि बताओ किस किताब में ऐसा कहा है कि प्रभु प्रेमपूर्ण व क्षमाशील है? किस शास्त्र में लिखा है?

शास्त्र में तो कहीं नहीं लिखा। कोई प्रमाण नहीं है जीसस के पास। सिद्ध नहीं कर सकते, लेकिन वह जो कह रहे हैं यहूदी पैगम्बरों के मार्ग निर्देशन में ही कह रहे हैं। मजबूरी में जब यहूदी उन्हें स्वीकार नहीं करते तो एक नए धर्म की रचना होती है, ईसाई धर्म दुनिया में आता है। लेकिन यह लाचारी की बात है। जीसस ने कभी ऐसा नहीं चाहा। कोई सद्गुरु नहीं चाहता कि नए धर्म की शुरूआत हो। लेकिन मजबूरी में करनी पड़ती है।

ज़रा सोचो ओशो जैन परिवार में पैदा हुए और वे कहने लगें कि मैं पच्चीसवां तीर्थंकर हूँ तो क्या जैन इसे स्वीकार कर पाएंगे? कतई नहीं, वे भूल जाएंगे कि 'अहिंसा परमो धर्मः' इत्यादि के सिद्धांत। तलवारें-बंदूकें निकल आएंगी, हत्या ही कर देंगे वे। यह स्वीकार न कर सकेंगे कि कोई पच्चीसवां तीर्थंकर हो सकता है। वे तो यह भी नहीं स्वीकारते कि इस पंचम

काल में कोई व्यक्ति चौथे गुणस्थान तक जा सकता है यह संभव नहीं, बुद्धत्व तो बहुत दूर की बात है। महावीर ने बताये हैं चौदह गुणस्थान, साधना के 14 पड़ाव। बुद्धत्व तो बहुत दूर की बात है, अंत में आता है। जैन तो कहते हैं चौथे पड़ाव तक भी कोई नहीं जा सकता इस पंचम काल में; फिर कोई व्यक्ति तीर्थंकर कैसे हो सकता है? कोई भी धर्म स्वीकार करने को राजी नहीं होता नए बुद्धपुरुष को। तब उस मजबूरी की स्थिति में एक नए धर्म की शुरूआत होती है, एक नई धारा जोड़नी पड़ती है। यह बिल्कुल लाचारी की अवस्था है।

तो स्मरण रखें कि विदेही सद्‌गुरु की उपस्थिति ओंकार-रूपी होती है, हम समाधि में डूबकर उनसे जुड़ते हैं। वे नाद-नूर स्वरूप हैं, प्रकाशमय संगीत हैं। यहां सुरति समाधि में, निरति समाधि में जो सिखाया जा रहा है, वह सद्‌गुरु की उस अलौकिक सूक्ष्म उपस्थिति से जुड़ने का मार्ग है। सभी सद्‌गुरु उस एक परमात्मा में ही समा जाते हैं। वहां सारी बूंदें अलग-थलग नहीं रहतीं। ऐसा नहीं है कि महावीर की बूंद अलग है, बुद्ध की बूंद अलग है, ओशो की बूंद अलग है। अब बूंदें, बूंदें न रही, सब सागर में समा गईं और सागर ही हो गईं।

प्रश्न-5 ओशो की समाधि पर लिखा है-'नेभर बॉर्न, नेभर डाइड, ओनलि विजिटेड दिस प्लैनेट अर्थ'। क्या ओशो ने इस वक्तव्य में किसी गूढ़ रहस्य से अवगत कराया है।

रहस्य तो गूढ़ नहीं। हाँ, हम आँख बन्द किए हैं। हमें दिखाई नहीं पड़ता। ओशो की एक किताब का नाम है- 'दि ओपन सीक्रेट'। वास्तव में जीवन के सारे रहस्य बिल्कुल खुली किताब की तरह हैं। लेकिन हमें पढ़ना नहीं आता, इसलिए हमें गोपनीय और गूढ़ लगते हैं। जिंदगी का रहस्य खुली हुई स्पष्ट बात है मगर हमारी नजरें धुंधली हैं। ओशो कहते हैं नेभर बॉर्न, नेभर डाइड। न कभी जन्मे, न कभी मरे, सिर्फ इस पृथ्वी गृह पर कुछ समय के लिए विचरण करने, घूमने, भ्रमण करने के लिए आए। यह मत सोचना की यह

बात केवल ओशो पर लागू होती है। यह बात सभी पर लागू होती है। चाहे तुम इसे जानो या न जानो, यही वक्तव्य तुम पर भी लागू होता है। न तुम्हारी चेतना का कभी जन्म हुआ, न तुम्हारी चेतना का कभी अन्त होगा। तुम सदा-सदा से हो। इस समय, यहां धरती पर घूमने आए हो। पर्यटन का ज़रा शौक लगा, चले आए रूप-आकृति धारण करके टहलने, सैर-सपाटा करने। शरीर के इस वाहन में सवार हो गए। थोड़ा घूम-फिर रहे हैं यहाँ। एक उत्सव है, जीवन एक आनन्द है। केवल ओशो के बारे में ही नहीं, यह बात सभी के बारे में सत्य है। फर्क केवल इतना है कि ओशो इस तथ्य को जानते, और हम इसे जानते नहीं। हम सोचते हैं कि हमारा जन्म फलाँ-फलाँ तारीख को हुआ और हमारी मृत्यु हो जाएगी और हम परेशान होते हैं कि कैसे मृत्यु से बचें? इसी चिंता में हमारा पूरा जीवन एक दुःख-दर्द की कहानी बन जाता है। काश, हमें पता चल जाए अपने अमृत स्वरूप का। ओशो जब कह रहे हैं नेभर बार्न, नेभर डाइड; तब शरीर के बारे में नहीं कह रहे हैं, मन के बारे में नहीं कह रहे हैं। तन-मन का, साइकोसोमेटिक कॉम्प्लैक्स का तो एक दिन जन्म हुआ और एक दिन अवसान हो गया। ओशो किसकी बात कर रहे हैं? कौन सतत् ओशो में जीता है, जो न जन्मा और न मरा? वह है उनके भीतर का ओंकार, वह उनके चैतन्य का प्रकाश। उसका न कोई जन्म है और न कोई मृत्यु। और यह बात केवल ओशो के बारे में सच नहीं। हम जानें या न जानें, लेकिन हमारी भी सच्चाई, वास्तविकता तो यही है।

ओशो किसी गूढ़ रहस्य की तरफ इशारा नहीं कर रहे हैं। बल्कि शाश्वत् और परम सत्य की घोषणा कर रहे हैं- एस धम्मो सनंतनो। यही है ताओ। यही है परम नियम कि उस ओंकार-आलोक रूपी चेतना का न तो जन्म होता है और न ही मृत्यु होती है। हाँ, बस लीला करने के लिए, एक खेल खेलने के लिए कभी-कभी वह रूप धारण कर लेती है। कभी सागर भाप बनकर उड़ता है, कहीं बादल बन जाता और फिर बूंदों के रूप में बरस

जाता है। एक खेल है, लीला है। फिर बूंदें दौड़ेंगी, नदी बह उठेगी; और नदी पुनः सागर से जा मिलेगी। एक वर्तुल में सब चीजें घूम रही हैं। इसलिए एक गैर-गंभीर खेल है।

ओशो के शब्द भी बड़े प्यारे हैं। ओनलि विजिटिड दिस प्लैनेट अर्थ। इस धरती पर पर्यटन हेतु आए। घूमने-फिरने... इसमें कोई गंभीर मामला नहीं है। हम लोग हर चीज को बहुत गंभीरता से लेते हैं और सीधी-सादी बात में भी गूढ़ रहस्य खोजते हैं। यह भी हमारी गंभीरता का लक्षण है।

चाहो तो कहो कि सारा जीवन ही रहस्यमय है या कहो कि यहाँ कोई रहस्य नहीं है, सब कुछ खुला-खुला है। हम ही नहीं देख रहे। हम अपनी आँखें बंद किए बैठे हैं इसलिए हमें रहस्य लगता है। रहस्य कुछ भी नहीं है। ओशो ने एक शाश्वत सत्य की, परम सत्य की घोषणा की है। न केवल स्वयं के बारे में, न केवल मनुष्यों के बारे में, पशुओं के बारे में, पक्षियों के बारे में, मछलियों के बारे में, पेड़-पौधों के बारे में; सबके बारे में सनातन सत्य कहा है; एक सनातन सत्य की घोषणा की है। यहाँ मृत्यु किसी की होती नहीं। जन्म किसी का होता नहीं। जो भी है सदा-सदा से है और सदा-सदा रहेगा। न कहीं से कुछ आता, ना कहीं कुछ जाता।

वैज्ञानिकों ने खोजा है कि पदार्थ अविनाशी हैं। एक छोटे से छोटे परमाणु को भी हम नष्ट नहीं कर सकते। जरा सोचो तो... जब पदार्थ का एक परमाणु तक अविनाशी है; तो चेतना का नाश कैसे होगा? वह भी अविनाशी है। वैज्ञानिक कहते हैं पदार्थ का कभी जन्म नहीं हुआ। जो है, वह सदा-सदा से है और इसलिए कभी नष्ट भी न हो सकेगा। ऐसा कभी कोई दिन नहीं होगा जब पदार्थ न हो जाए। रेत का एक छोटा सा कण भी मिटाया नहीं जा सकता, यह असंभव है। बूंद का एक छोटा सा कण भी हम मिटा नहीं सकते। रूप बदल सकते हैं, मिटा नहीं सकते। जब पदार्थ तक नहीं मिट सकता। चेतना कैसे मिटेगी? वह अमृत, अनश्वर, अविनाशी है। इसलिए यह घोषणा एक सार्वलौकिक, सार्वभौमिक सत्य है। केवल एक व्यक्ति ओशो के

बारे में नहीं है।

प्रश्न-6 ओशो के कुछ पुराने संन्यासी अक्सर कहते हैं कि जो कुछ करेंगे वह ओशो ही करेंगे। हम तो बस सक्रिय ध्यान करते जा रहे हैं? सारी जिम्मेवारी ओशो की है। ये लोग इसी कारण किसी अन्य जीवित सद्गुरु की भूमिका के बारे में नकारात्मक रवैया अपनाते हैं। क्या इस संबंध में आप कुछ कहना चाहते हैं?

-मा आत्म वीणा

मेरे कहने से क्या होगा! वे मेरी बात तो सुनेंगे नहीं। जीवित सद्गुरु के बारे में तो वे पहले से ही फिक्स्ड निगेटिव एटीट्यूड, एक नकारात्मक रवैया अपनाए हुए हैं। इसलिए मेरे कुछ कहने का सवाल नहीं है। मैं ओशो के ही वचन पढ़कर सुनाता हूँ। शायद उनके कानों में जूं रेंगे! 'कहै कबीर दिवाना' के पहले प्रवचन से ओशो की ही अमृत-वाणी उद्धृत करता हूँ।

कबीर साहब का वचन है-

'जब मैं भूला रे भाई, मेरे सद्गुरु जुगत लखाई।'

इसकी व्याख्या करते हुए ओशो कहते हैं- जुगत यानि विधि। सद्गुरु जो विधि देता है उसका नाम है जुगत। लेकिन अकेली विधियाँ काम न करेंगी। जीवित गुरु चाहिए। विधियाँ तो उपलब्ध हैं पंतजलि का योग शास्त्र, योग सूत्र उपलब्ध है। सब विधियाँ लिखी हैं उसमें। लेकिन अगर किताब पढ़कर तुमने श्रम किया तो विधियाँ घड़ी की तरह होंगी। यंत्रवत। तुम कर भी लोगे। लेकिन करोगे तो तुम्हीं। सोया हुआ आदमी। कबीर कहेंगे स्मरण करो, तुम सुमिरन कर लोगे, माला फेर लोगे। लेकिन तुम ही फेरोगे न? जीवित गुरु चाहिए। सभी धर्म मर जाते हैं जिस दिन उनका जीवित गुरु मर जाता है; उसी दिन वे धर्म भी मर जाते हैं। सिक्ख धर्म जिन्दा था, जब तक दस गुरु जिंदा रहे। जिस दिन गुरु गोविन्द सिंह ने तय किया कि अब गुरुग्रन्थ

ही गुरु होगा, अब कोई जीवित गुरु नहीं होगा। उस दिन सिक्ख धर्म मर गया। तो दस गुरुओं के जीते-जी जो खूबी थी सिक्ख धर्म में, तब बात ही कुछ और थी। तब वह यत्र नहीं था, जीवित आदमी था। जैनों के चौबीस तीर्थंकर जब तक थे, तब तक एक जीवंत धारा थी। फिर जैनियों ने तय किया कि अब चौबीस से ज्यादा तीर्थंकर नहीं हो सकते। महावीर के बाद उन्होंने दरवाजा बंद कर दिया। जैन धर्म मर गया। आज जैन धर्म केवल एक लाश है। मोहम्मद के साथ इस्लाम धर्म जिन्दा था, कुरान के साथ मुर्दा है। हालांकि कुरान मोहम्मद की ही किताब है। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

मैं खड़ा हूँ एक डण्डा लिए हुए और तुम सो रहे हो। मैं डण्डे से तुम्हें उठाता हूँ। डंडा नहीं उठाता, मैं उठाता हूँ। तुम्हारी आँखें खुल जाती हैं। मैं तो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता, डण्डा तुम्हें छूता दिखाई पड़ता है। तुम पकड़ लेते हो डण्डे को बड़े अहोभाव से कि बड़ी कृपा कि मुझे जगा दिया। अब तुम अपने बच्चों को भी डंडा दे जाओगे कि संभाल कर रखना बेटा, यह डंडा खूब अच्छे से जगाता है। लेकिन जुगत मर गई। डंडा नहीं जगाता था, डंडे के पीछे जीवित हाथ थे। डंडा क्या जगाएगा? डंडा अकेला क्या करेगा? सभी शास्त्र डंडे हो जाते हैं। सभी विधियाँ डंडे हो जाती हैं। तुम इनकी पूजा कर सकते हो, याद कर सकते हो। और ऐसा भी नहीं है कि कभी उनसे लोग जगे न थे। निश्चित रूप से जगे थे, लेकिन कोई जीवित हाथ पीछे था। कोई नानक पीछे थे। वह कंपन जो डंडे में था डंडे का नहीं था, वह उस जीवित हाथ का था। डंडे में जो जीवन प्रवाहित हो रहा था वह नानक का था। अब तुम चले जाओ। पाँचों ककार पूरे करते रहो। केश बाँधो, कंघा लगाओ, कृपाण रखो, कच्छा पहनो जो तुम्हें करना है, करो। मगर यह सब डंडे हैं। इनसे कुछ होने वाला नहीं। जुगत हमेशा जीवित होती है। जब कोई जागा हुआ हाथ पीछे होता है। मैं अभी हूँ। अभी तुम मेरे डंडे का उपयोग कर लो। मेरे मर जाने के बाद तुम करते रहना सक्रिय

ध्यान, कुछ भी न होगा।

मैं फिर से रिपीट करता हूँ ओशो का यह वचन– 'मैं अभी हूँ। अभी तुम मेरे डंडे का उपयोग कर लो। मेरे मर जाने के बाद तुम करते रहना सक्रिय ध्यान, कुछ भी न होगा। और तुम करोगे मेरे मर जाने के बाद, मुझे पक्का पता है। इसमें कोई शक नहीं। क्योंकि यही तुम्हारी पुरानी आदत है। क्यों ऐसा होता है? ऐसा इसलिए होता है कि विधियों से तुम्हें कोई डर नहीं। तुम्हारी नींद को कोई डर नहीं। तो विधियाँ तो तुम करने को राजी हो जाते हो। लेकिन गुरु से बड़ा डर है, बड़ा खतरा है। क्योंकि जीवित आदमी के पास तुम कितनी देर सोए रह सकोगे? नींद तुम्हें छोड़नी ही पड़ेगी। वह तुम्हारी नींद छुड़ाएगा। वह तुम्हें जगाएगा।

'जब मैं भूला रे भाई, मेरे सद्‌गुरु जुगत लखाई।'

और क्रियाकाण्ड का अर्थ है वे जुगतें, जिनका जीवित हाथ विदा हो गया। वे सब क्रियाकांड हो जाती हैं। मेरे साथ ध्यान करो। वह एक अलग बात है। तुम मेरे बिना ध्यान करोगे, वह एक क्रियाकांड हो जाएगा। तुम कर लोगे सारी विधि–विधान। ठीक–ठीक पूरी–पूरी। ठीक श्वास लोगे, ठीक उछलोगे, कूदोगे, हू–हू चिल्लाओगे। सब नाटक होगा, तुम उसके अभ्यासी भी हो जाओगे। लेकिन वह केवल व्यायाम होगा। थोड़ा–बहुत लाभ जो शरीर को हो सकता है, वह होगा। लेकिन तुम जाग न सकोगे।

संप्रदाय का अर्थ होता है मरा हुआ धर्म। संप्रदाय का अर्थ है... जैसे तुम्हारे पिता बड़े प्यारे थे, जिंदा थे, तुमने उनकी खूब सेवा की। लेकिन अब वे मर गए, अब क्या करोगे? संप्रदाय का अर्थ है पिता की लाश को घर में रख लो और पूजा करो। समझदार आदमी यह नहीं करता। माना कि पिता से बहुत प्यार था। रोता है, जार–जार रोता है, छाती पीटता है। महीनों तक यह घाव न भरेगा। लेकिन सब ठीक। अर्थी सजाता है। पिता को लेकर रोता हुआ मरघट जाता है। प्यारे थे, सम्बन्ध गहरा था। लेकिन मर गए, बात खत्म हो गई। जिस दिन दुनिया में वस्तुतः लोग थोड़ी गहरी समझ के होंगे, जिस दिन

धर्म मरेगा, संप्रदाय बनेगा, उसी दिन वे अर्थी सजाकर मरघट ले जाकर विदा कर देंगे। ताकि जब भी नया सद्‌गुरु पैदा हो, लोग उसके लिए उपलब्ध हो सकें। लोग पुराने से बंधे हों तो नए को उपलब्ध नहीं हो पाते। पुराने से ग्रस्त रह जाएं तो नए के लिए उपलब्ध नहीं हो पाते।'

तुम जिन पुराने मित्रों की बात कर रही हो आत्म वीणा, उनसे कहना कहै कबीर दिवाना का पहला प्रवचन सुनें। वे बेचारे भ्रांति में हैं कि वे ध्यान कर रहे हैं। खाली डंडा उनके हाथ में है। वे हाथ जो जगा रहे थे उस डंडे के माध्यम से अब वे हाथ नहीं हैं। वे व्यर्थ ही मेहनत कर रहे हैं, कवायद कर रहे हैं। ठीक है, व्यायाम होगा, शरीर को कुछ लाभ होगा। लेकिन असली बात न होगी। जागरण घटित न हो सकेगा। इसलिए सदा ही ओशो ने जीवित गुरु की भूमिका को सराहा है। हमेशा उन्होंने कहा है सदा जीवित गुरु खोजना। यही बात मैं भी तुमसे कहता हूँ। आज मैं तुमसे जो कह रहा हूँ, जो विधियाँ करवा रहा हूँ, ये मेरे होते हुए काम कर रही हैं। कई लोग कहते हैं कि आप कैसेट में रिकार्ड करके दे दें ताकि हम घर जाकर कर सकें। फिर ये काम न करेंगी। मैं एक दिन मर जाऊँगा। मेरे बाद भी लोग इसी प्रकार के कुछ क्रियाकांड करते रहेंगे। लेकिन वे फिर खाली कारतूस हो जाएंगे। यदि कोई जीवित सद्‌गुरु करवाएगा तो उसकी जीवंतता उनमें मौजूद होगी। तब एक जादुई असर बरकरार रहेगा। लेकिन अगर कोई जीवित व्यक्ति नहीं होगा तो विधियाँ कुछ भी न कर सकेंगी, किसी को न जगा सकेंगी, किसी को समाधि में न ले जा सकेंगी।

विज्ञान भैरव तंत्र कितनी पुरानी किताब है... शायद पाँच हजार साल से भी ज्यादा प्राचीन! कहाँ कोई जागता है उसे पढ़कर? उसमें ध्यान की सारी विधियाँ तो लिखी हैं। पंतजलि का योग-सूत्र हजारों साल से तो लोग पढ़ रहे हैं, कहाँ कुछ होता है? ज्यादा से ज्यादा इतना होता है कि कुछ लोग कष्टदायी सरकसी-आसन साधना सीख गये हैं जो कि उस बहुमूल्य पुस्तक में लिखे ही नहीं हैं। शरीर सुखद-स्थिर हो, बस इसे आसन कहा है पतंजलि

ने। लोग अहंकार-केन्द्रित देह के व्यायाम कर रहे हैं, अब उनसे चेतना तो नहीं जागती, अहंभाव पुष्ट होता है, बस! लेकिन पंतजलि जब जिन्दा थे तो निश्चितरूपेण उनके अष्टांग-योग पर चलकर बहुत लोग समाधि की मंजिल पाए। जब शिव जीवित थे, देवी ने उनसे सवाल पूछे, उन प्रश्नों का उत्तर पाकर देवी जागीं। आज उनका कोई भी उपयोग नहीं है। हमेशा याद रहे, जीवित सद्‌गुरु को खोजना। और हम छोटी-छोटी बातों में भी कितनी समझदारी बरतते हैं।

तुम बीमार पड़ते हो, अपना इलाज करवाने किसके पास जाते हो? किसी जीवित डॉक्टर के पास या उस डॉक्टर के पास जो स्वयं ही विदा हो चुका। माना कि वह कितना ही प्रतिभाशाली, कितनी ही वैज्ञानिक बुद्धि का, बड़ा खोजबीन करने वाला डॉक्टर रहा हो। हो सकता है उसने बड़ी-बड़ी टैक्स्ट-बुक्स लिखीं जो मैडिकल कॉलेज में चलती हों। संभव है उसने नई दवाइयां या शल्य चिकित्सा की विधियां आविष्कृत की हों। लेकिन फिर भी वह डॉक्टर अब तुम्हारा इलाज नहीं कर सकता। तुम्हारे मोहल्ले में प्रैक्टिस करने वाला एक साधारण-सा डॉक्टर ही तुम्हारा इलाज कर पायेगा और हो सकता है यह डॉक्टर भी उसी महान डॉक्टर की लिखी किताबें पढ़कर डॉक्टर बना हो। लेकिन वह महान डॉक्टर जो अब शरीर में नहीं है, उससे तुम इलाज न करवा सकोगे। सामान्य-साधारण बातों में तो तुम समझदारी दिखाते हो। अध्यात्म की गहन बात में तुम्हारा अहंकार आड़े आता है। जीवित गुरु के पास झुकने का अर्थ है तुम्हें अपना अहंकार समर्पित करना होगा और वही तुम करना नहीं चाहते। मुर्दा पत्थर की मूर्ति के सामने, किसी किताब के सामने, या किसी फोटो के सामने झुकने में तुम्हारा क्या बिगड़ता है? तुम भली-भांति जानते हो कि बेचारा फोटोग्राफ तुम्हारा कुछ ना बिगाड़ सकेगा। तुम्हारे द्वारा ही बाजार से खरीदी गई वह मूर्ति तुम्हें रूपांतरित न कर सकेगी। तुम्हीं ने तो प्रकाशित कराई वह पुस्तक, उसे प्रतिष्ठित किया, तुम जब चाहो उठाकर फेंक दो। वह कागज-स्याही से निर्मित जानकारी का

पुलिंदा तुम्हें कैसे बदलेगा? तुम्हारे ज्ञान-संग्रह में वृद्धिकर अभिमान को सजाएगा। और गहन निद्रा में सुलाएगा। जीवित सद्‌गुरु ही केवल जगाएगा। और मैं यह भी जोड़ देना चाहता हूँ कि सद्‌गुरु जो कार्य करता है वह उन्हीं के मार्ग निर्देशन में कर रहा है, जो अब शरीर में नहीं हैं और उनका मार्ग निर्देशन समय अनुसार बदलता रहेगा।

कई लोग आरोप लगाते हैं मुझ पर कि मैं ओशो से हटकर कुछ कर रहा हूँ। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूँ, यह ओशो की अनुमति से ही हो रहा है। समय बदल रहा है, आगे भी बदलता रहेगा। ओशो ने जब शुरुआत की थी, तब वे ध्यान के बीज बो रहे थे। हजारों हृदयों में उन्होंने ध्यान के बीज बोए। बहुतेरे बीज अंकुरित हो गए, पौधे बन गए। अब फूल खिलने का समय आ गया, बसंत का मौसम आ गया। और जैसा की ओशो भविष्यवाणी कर गए कि 'इक्कीसवीं सदी या तो युद्धों की सदी होगी या बुद्धों की सदी होगी' अब वह वक्त आ गया।

क्या संन्यासीगण जिन्दगी-भर ध्यान के बीज ही बोते रहेंगे? समाधि के वृक्ष कब ऊगेंगे, संबोधि के सुमन कब खिलेंगे? ओशो ने बारम्बार कहा है ध्यान तो एक नाव है। जिस पर तुम्हें चढ़ना है और उतरना भी है। नाव से उतरने का भी ख्याल रखना। नाव पर ही मत बैठे रहना। ध्यान तो एक नाव है, ध्यान तो एक औषधि है। जब तुम बीमार हो तो औषधि लेना, जब तुम स्वस्थ हो जाओ, तो औषधि को छोड़ देना। अब औषधि पीते ही मत चले जाना। नहीं तो एक नई बीमारी निर्मित हो जाएगी। जो लोग केवल ध्यान-विधि कर रहे हैं बीस-पच्चीस साल से, उन्हें चेताना होगा... ओशो ने कब कहा बीस साल सक्रिय ध्यान करने के लिए? ज्यादा से ज्यादा तीन महीने का सुझाव दिया है। कहा है, बहुत त्वरा से, तीव्रता से करोगे तो तीन दिन में सफाई हो जाएगी। तीन दिन पर्याप्त होंगे। जाकर पढ़ना ओशो की प्रसिद्ध किताब 'रजनीश ध्यान योग'। उसमें ओशो कहते हैं, कम से कम तीन दिन, ज्यादा से ज्यादा तीन महीने पर्याप्त होंगे। तीस साल करने को कहाँ कहा है उन्होंने?

ओशो पर टालना भी तुम्हारा बहाना है। तुम समर्पित होना नहीं चाहते, झुकना नहीं चाहते। अपने अहंकार को बचाकर रखना चाहते हो इसलिए कहते हो कि जो करना है ओशो ही करेंगे। ओशो क्यों करेंगे... उन्होंने कब कहा है कि मैं करूँगा? ऐसा तो कभी नहीं कहा। रजनीशपुरम में तो उन्होंने स्पष्ट घोषणा की थी; पढ़ना रजनीशपुरम वाला प्रवचन, जहाँ उन्होंने कहा है कि अब मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं। जिस दिन उन्होंने माला और गेरुए कपड़े पहनने को मना की थी और लोगों ने तालियाँ बजाई थीं, बहुत खुश हुए थे, और अधिकांश लोगो ने तुरन्त माला उतार दी थीं, गेरूए कपड़े पहनना छोड़ दिया था; उसके एक हफ्ते बाद ओशो बहुत नाराज हुए थे और उन्होंने कहा था कि ऐसा लगता है कि तुम इन्तजार ही कर रहे थे... जैसे माला तुम्हारे लिए बोझ थी, जैसे गेरूए कपड़े तुम मजबूरी में पहन रहे थे, प्रेम-भाव से नहीं। मैंने जैसे ही कहा कि छोड़ दो, तुमने फौरन छोड़ दिए। तुम्हारे सूटकेस में दूसरे कपड़े तैयार रखे ही हुए थे... और तुम बीस साल से संन्यासी हो, फिर दूसरे रंग के कपड़े किस लिए रखे थे? जरूर तुम्हारा भाव रहा होगा किसी दिन इनको छोड़ने का। मैंने कहा और तुमने तुरंत छोड़ दिया। यह घटना बताती है कि तुम मेरे प्रति समर्पित नहीं हो। अभी तक मैं तैयारी कर रहा था सामूहिक समाधि की, सामूहिक बुद्धत्व की। पूरा का पूरा कम्यून एनलाईटैन्ड हो जाए। आज मैं घोषणा करता हूँ कि वह तैयारी अब मैं न कर सकूँगा। वे लोग जो मेरे प्रति समर्पित नहीं हैं, उनके साथ कोई गहरा प्रयोग नहीं किया जा सकता और आज से तुम्हारा बुद्धत्व, तुम्हारी जिम्मेवारी है। तुम अपना परिश्रम करो, तुम अपने विवेक से चलो। तुम्हें जो सूझता हो वैसा करो। आगे मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं है।

उन पुराने संन्यासी मित्रों से कहना कि ओशो का उपरोक्त प्रवचन सुनें। 'जो कुछ करेंगे, ओशो ही करेंगे', यह उन मित्रों का आलस्य बोल रहा है। ओशो को जो करना था, वे कर चुके। जब शरीर में थे तब उन्होंने करने की भरपूर कोशिश की। रजनीशपुरम् में जो ग्रुप मौजूद था, विशेषरूप से जो

अधिकारीगण थे, उन गैर–समर्पित अहंकारी लोगों की वजह से वह कोशिश असफल हो गई और ओशो ने घोषणा कर दी कि अब उनकी कोई जिम्मेवारी नहीं बनती। वह जो कम्यूनल–एनलाईटेनमैंन्ट के लिए तैयारी कर रहे थे, वह उन्होंने समाप्त कर दी। अब एक–एक व्यक्ति की अपनी–अपनी जिम्मेवारी है। तुम अपने बुद्धत्व के लिए अथवा अपने बुद्धूत्व के लिए स्वयं जिम्मेवार हो। तुम अपनी मेहनत स्वयं करो। तो उन संन्यासी मित्रों को याद दिलाना, ओशो के ये वचन।

स्वामी प्रेम विनोद ने जो सवाल पूछा था, वह 1970 का वचन है। ओशो ने एक फोटोग्राफ के ऊपर लिखा था– 'समर्पण करो और मैं तुम्हें रूपांतरित करूँगा। यह मेरा आश्वासन है।'

स्मरण रहे यह वक्तव्य कंडीशनल, सशर्त है। समर्पण करो... वह समर्पण के बिना पूरा नहीं हो सकता। हम शर्त नहीं निभा पाए। 'अब एक–एक व्यक्ति की अपनी–अपनी जिम्मेवारी है। तुम अपने बुद्धत्व के लिए स्वयं जिम्मेवार हो।' यह ओरेगॉन में 1985 का वचन है।

1986 में नेपाल प्रवास के दौरान ओशो ने पुनः कहा– बी ओपन एंड वल्नरेबिल, एंड आई विल बी एवेलेबिल टू यू, दिस इज माई प्रॉमिस। फिर शर्त लगाई है– बी ओपन एंड वल्नरेबिल।

वही तो मैं बारंबार कह रहा हूं: बी ओपन एंड वल्नरेबिल। हृदय के वातायन खोलकर रखो, गृहणशील बनो।

प्रश्न-7 ऊंचे नाम वाले प्रसिद्ध संन्यासी, ओशो जगत से अधिकृत कहे जाने वाले प्रभावशील शिष्य ध्यान में ना डूबकर, संसार की कीचड़ भरी राजनीति में उलझ रहे हैं। यह देखकर दु:ख होता है कि जब ऐसे महान संन्यासियों की यह दुर्गति हो रही है, तो हम सामान्य लोगों को बुद्धत्व कैसे मिल सकेगा?

-मा अन्तर्वीणा

बुद्धत्व हमेशा सामान्य लोगों को ही मिलता है– सहज और साधारण लोगों को। तुमसे किसने कहा कि बड़े नामधारी लोगों को बुद्धत्व मिलेगा? उन्हें कभी नहीं मिला, मिल नहीं सकता और बुद्धत्व उनकी जरूरत भी नहीं है। लेकिन वे निरुपयोगी नहीं है; उनका होना भी जरूरी है। एक प्रवचन में ओशो ने स्वयं वर्णन किया है कि मैं जो कम्यून बना रहा हूँ, जो उपवन सजा रहा हूँ, इस बगीचे की बागुड़ भी तो लगानी होगी। भीतर पौधे होंगे, फूल लगेंगे, सुवास उड़ेगी, फल लगेंगे, लेकिन बाहर मेड़ पर तो कैक्टस लगाने होंगे। उनकी भी जरूरत है। इस बाग की रक्षा के लिए कैक्टस के पेड़ लगाने होंगे बाउन्ड्री पर। वरना कौन रक्षा करेगा बगीचे की? कुछ चालाक, शोषक, राजनीतिक दिमाग वाले, धन–पद की अभीप्सा से भरे हुए लोगों की भी जरूरत है। सबकी आवश्यकता है। परमात्मा ने गैर–जरूरी किसी को बनाया ही नहीं। सद्‌गुरु बस इतना करते हैं कि जो भी उनके पास आते हैं, सभी का सदुपयोग कर लेते हैं। ओशो ने ऐसा ही किया।

तुम जिन्हें कह रही हो सामान्य संन्यासी, केवल इन्हीं से उम्मीद है कि इनमें बुद्धत्व का फूल खिलेगा। जो बहुत असाधारण व असामान्य हैं, अपने आपको पता नहीं क्या समझते हैं, वे तो बहुत अहंकारी हो जाते हैं। वे बबूल या कैक्टस के पेड़ हैं। काँटे ही काँटें उनमें हैं। हां, वे तो चुभेंगे और वही उनकी उपयोगिता है। मैं उनकी जरा भी निंदा नहीं कर रहा हूँ। वे बड़े उपयोगी हैं। उनके बिना संस्थाएं कैसे चलेंगी? उनके बिना धनोपार्जन किए आश्रम और केन्द्र कैसे खड़े होंगे? गुलाब के नाजुक फूलों की रक्षा हेतु कांटे भी चाहिए। उनकी अनिवार्यता समझना, अहोभाव से भरना; और तुम अपनी सामान्य, सहज अवस्था में डूबना। बुद्धत्व का फूल सामान्य लोगों में ही खिलता है। जो अपने–आप को किसी भी भांति असाधारण, हटकर समझते हैं वे अहंकारी लोग होते हैं। वे स्वयं बुद्धत्व तक नहीं जा सकते, मगर वे बहुतों को भेजने की व्यवस्था में काम आ जाते हैं। प्रेमभाव और धन्यवाद–पूर्वक उन्हें स्वीकारो।

प्रश्न 8- वर्तमान में आप ही ओशो की जीवंत धारा के आचार्य हैं, इसका क्या प्रमाण है? और ऐसा दावा तो और भी बहुत लोग कर रहे हैं। हम आम संन्यासी-जन कैसे पहचानें, कैसे निर्णय करें? कोई लक्षण बताएं।

तुम्हें किसी के बारे में निर्णय करने की जरूरत नहीं है। तुम जज मत बनो। ऐसे कोई लक्षण नहीं होते, जहाँ हम बाहर से, किन्हीं बाह्य प्रमाणों से किसी बुद्धपुरुष को पहचान सकें। ऐसे कोई गुण नहीं होते। न कभी पहले रहे, न कभी आगे होंगे। तुम सिर्फ इतना ही देखो कि क्या तुम्हें सीखने की प्यास है? क्या तुम एक सद्‌शिष्य हो? तुम इसकी चिंता मत करो कि सद्‌गुरु के क्या लक्षण होते हैं? बेहतर हो, इसकी फिक्र करो कि एक सद्‌शिष्य के क्या लक्षण होते हैं? वे सद्‌गुण तुम अपने भीतर जन्माओ, उन्हें विकसित होने दो। और तुम पाओगे कि सद्‌गुरु से मिलन हो जाएगा। अगर तुम सद्‌शिष्य नहीं हो तो लाख सद्‌गुरु खड़े रहें, कुछ भी नहीं होगा। शीला और उसके बीस लोगों की टीम ओशो के सर्वाधिक नजदीक थी, सद्‌गुरु के इतने निकट होकर भी उनको क्या उपलब्ध हो पाया? भगवान बुद्ध के 'धम्मपद' में एक अनूठा वचन है। ओशो ने 'एस धम्मो सनंतनो' में उसकी बड़ी प्यारी व्याख्या की है- अगर दाल में कलछुरी वर्षों पड़ी रहे तो भी दाल का स्वाद नहीं जान सकती। बेचारी कलछुरी लोहे की, पीतल या स्टील की बनी है, दाल का स्वाद वह न जान सकेगी। दाल का स्वाद जानने के लिए संवेदनशील जीभ चाहिए। तो केवल गुरु के निकट हो जाने से ही कुछ नहीं हो जाता। तुम संवेदनशील हो या नहीं, तुम सद्‌शिष्य हो अथवा नहीं, तुम समर्पित हो कि नहीं; यह बात ज्यादा महत्वपूर्ण है- गुरु की उपस्थिति से भी ज्यादा महत्वपूर्ण।

चीन का महान संत लाओत्सु एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहा था। एक गिरते हुए सूखे-पीले पत्ते को देखकर परमज्ञान को प्राप्त हो गया। वहाँ

तो कोई जीवित सद्गुरु भी न था। लेकिन लाओत्सु एक संवेदनशील, सीखने में उत्सुक, विनम्र सद्शिष्य था इसलिए टूटते हुए पत्ते से भी उसने बहुत-कुछ सीख लिया। इसके ठीक विपरीत, दाल में कलछुरी पड़ी रहे तो भी दाल का स्वाद न जान सकेगी।

असली बात यह नहीं है कि किसका दावा सही है। तुम इसकी चिंता न करो। इसका निर्णय किसी भांति से नहीं हो सकता। तुम केवल इतनी चिंता करो कि तुम्हारी ट्यूनिंग किसके साथ होती है, असली बात वह है। अगर तुम्हारी ट्यूनिंग मेरे साथ हो रही है तो फिर मेरे साथ टिको। यदि नहीं हो रही तो छोड़ो, कहीं और तलाश करो। इसका कोई उपाय नहीं जानने का कि कौन बुद्ध है, कौन नहीं है? और जरूरी नहीं कि हर किसी बुद्धपुरुष के साथ तुम्हारी ट्यूनिंग हो जाए। ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है।

एक उदाहरण से मैं समझाऊं। अगर मीरा महावीर के पास गई होती तो कोई ट्यूनिंग न बैठती। महावीर का व्यक्तित्व बिल्कुल अलग किस्म का, मीरा का व्यक्तित्व सर्वथा भिन्न। कहाँ नाचती-गाती, घुंघरू बांधे मीराबाई और कहां नंग-धड़ंग खड़े महावीर... आपस में कोई तालमेल न बैठता। महावीर उसको शिष्य के रूप में स्वीकार न करते। कहते, हे देवी! स्त्रियों का मोक्ष नहीं होता। कम से कम यहाँ से तो जाओ। मीरा जैसी स्त्रियों को दूर हटाने के लिए ही उन्होंने कहा होगा कि स्त्रियों का मोक्ष नहीं होता। न मीरा में कोई कमी थी, न महावीर में कोई कमी थी। लेकिन दोनों की ट्यूनिंग नहीं हो सकती थी। इसलिए इस बात की चिन्ता मत करो कि किसका दावा सही है किसका गलत? तुम इसकी ज्यादा फिक्र करो कि तुम्हारी ट्यूनिंग कहां सही बैठती है, तुम्हारा कहां विकास होता है, कहां तुम्हारे भीतर प्रीति और जागृति घटित होती है? बस इतना पर्याप्त है।

प्रश्न-9 ओशो ने एक जगह कहा है कि बुद्धत्व के बाद दोबारा जन्म नहीं होता। दूसरी जगह कहा है कि यदि मेरा

काम अधूरा छूट गया तो मैं एक बार और जन्म लूंगा। इन विरोधाभासी वक्तव्यों को कृपया समझाएं।

विरोधाभासी बिल्कुल नहीं। बुद्धपुरुषों के वचन जगाने की डिवाइस, युक्ति होते हैं। जिन मित्रों से कहा था कि दोबारा फिर आऊँगा वे लोग नए साधक थे। यह घोषणा 1970 के पहले की थी। कहा, चिन्ता मत करो, तुम साधना में लगो। यदि मैं विदा भी हो गया बीच में, तो फिर दोबारा आऊँगा और साधना में तुम्हारी कंटिन्यूटी बरकरार रखूँगा। उनको सहारा देने के लिए ऐसा कहा था ताकि वे भरोसे के साथ चलना शुरू करें।

अब मैं दोबारा नहीं आऊँगा, यह उन लोगों से कहा था जो साधना में काफी आगे बढ़ चुके थे। यदि उनसे कहा कि फिर आऊँगा तो वे आलस में पड़ जाएंगे कि जल्दी क्या है! अगले जन्म में फिर सद्‌गुरु के साथ होंगे, फिर अंतर्यात्रा करेंगे। ओशो ने उनसे कहा कि नहीं, यह मेरा आखिरी जन्म है। दोबारा मेरा आना संभव नहीं है। बुद्धत्व के बाद कोई नहीं लौटता। पहला वचन एक तरकीब, डिवाइस है प्यास की तीव्रता और साधना में त्वरा बढ़ाने के लिए और दूसरा वचन भी एक डिवाइस है साधना की त्वरा को बरकरार रखने के लिए। दोनों वक्तव्यों में उनकी अपार करुणा झलकती है।

मैं आपसे तीसरी बात कहता हूँ कि बुद्धपुरुष की स्वतंत्रता है कि वह आना चाहे तो आए; न आना चाहे तो न आए। मुक्तपुरुष का और क्या अर्थ होता है? कि अब वह किसी भांति बंधा नहीं है। न तो आने के लिए बंधा है और न ही आने के लिए मजबूर है। उसकी मौज, उसकी मर्जी! तो कोई विरोधाभास नहीं है। दोनों बातों में एक ही डिवाइस छिपी है। बुद्धपुरुष स्वतंत्र होते हैं– सर्वथा मुक्त। उनकी मौज होगी तो आएंगे, फिर लीला करेंगे, इस पृथ्वी ग्रह पर भ्रमण करेंगे। नहीं मौज आई तो नहीं आएंगे। दोनों बातों के लिए स्वतंत्र हैं। यही 'आवागमन से मुक्ति' का वास्तविक अर्थ है। सामान्यत: लोग सोचते हैं कि आवागमन से छुटकारे का मतलब है कि दोबारा जन्म नहीं होगा। यदि ऐसी मजबूरी हो गई कि जन्म ही नहीं सकते,

जिन खोजा तिन पाइयां

हम जिस आत्मा को, परमानन्द को, सच्चिदानन्द को खोजने जा रहे हैं उसमें कोई छीना-झपटी नहीं है। बाहर का धन तो छीना-झपटी से मिलता है। बाहर के पद के लिए तो बड़ी राजनीति और चालाकी चाहिए। लेकिन भीतर का जो परमपद है, उसके लिए किसी चालाकी की नहीं, उसके लिए सरलता की जरूरत है। उसके लिए छीना-झपटी और किसी लोभ की जरूरत नहीं महत्वकांक्षा और एम्बीशन की जरूरत नहीं। उसके लिए तो बिल्कुल स्थिर हो जाने की जरूरत है। हम सारी भागदौड़ बन्द कर दें। तब अपने भीतर डूबना होता है तो कबीर साहब का वचन बाहर के जगत के लिए नहीं, बल्कि भीतर के जगत के लिए है। ऐसा नहीं होगा कि जब आप पहुँचे परमात्मा को खोजने तो पता चला कि परमात्मा आउट ऑफ स्टॉक हो गया। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, कबीर आदि पहले ही ले जा चुके हैं, कि निर्वाण में आप मोक्ष

के द्वार पर पहुँचे तो वहाँ बोर्ड लगा हुआ है हाऊस फुल, जगह नहीं है, नो वकेन्सी। नहीं, मोक्ष में सदा ही जगह है। क्योंकि वह कोई स्थान नहीं है। वह हमारी ही अन्तर्आत्मा का नाम है। भीतर जिसने भी खोजा, उसने सदा पाया। दुर्भाग्यशाली हैं वे लोग, जो खोजते ही नहीं। जो केवल बाहर ही बाहर उलझे रहते हैं। याद रखना, मैं बाहर के विरोध में नहीं हूँ। जरूर बाहर शिक्षा प्राप्त करना, बाहर धन भी कमाना, दुकान भी चलाना, मकान भी बनाना। वह सब जरूरी है लेकिन पर्याप्त नहीं। इट इज एसेन्शियल बट नॉट एनफ। सिर्फ उससे ही जीवन में तृप्ति नहीं हो सकती। सुविधा हो सकती है। शान्ति नहीं हो सकती। आपके पास एक अच्छा मकान है, अच्छा फर्नीचर है तो आप कम्फरटेबली, सुविधापूर्वक रह सकेंगे लेकिन इससे आपके चित्त में कोई शान्ति नहीं आने वाली। शान्ति प्राप्त करने के लिए कुछ और करना होगा। बाहर आपके पास धन है, पद है, शक्ति है, तो आप सुख का इंतजाम कर लेंगे। लेकिन आनन्द का इंतजाम नहीं होगा। धन से सुख खरीदा जा सकता है, आनन्द नहीं खरीदा जा सकता। आनन्द तो हमारी अन्तर्आत्मा की क्वालिटी, उसकी गुणवत्ता है। वह तो भीतर खोजने वाले को मिलती है, ध्यान में डूबने पर, समाधि में जाने वाले को मिलती है। कबीर साहब कहते हैं– जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ। ये ऊपर–ऊपर न मिलेगी। संसार का अर्थ है ऊपर की सतह और परमात्मा का अर्थ है भीतर की गहराई। कबीर कहते हैं– 'मैं बौरी डूबन डरी।' मैं पगली डूबने से डरी और इसलिए 'रही किनारे बैठ।' मैं सागर के किनारे बैठी रही। मोती छिपे थे सागर के भीतर गहराइयों में। मैं वहाँ तक पहुँच न पाई। कबीर साहब हम सब पर व्यंग्य कर रहे हैं। उन्होंने तो मोती पा लिए। उन्होंने तो परम धन पा लिया।

ऊपर–ऊपर हम सतह पर हैं। इसके अलावा और गहराइयाँ भी हैं। उन गहराइयों में जाकर परम शान्ति, परम आनन्द की प्राप्ति होती है। वहाँ जाकर ही जीवन में तृप्ति मिलेगी। चाहे हम यहाँ कितने ही सफल हो जाएँ। हम कितने ही अमीर हो जाएँ। चाहे हम राजा–महाराजा बन जाएँ, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री बन जाएँ; कुछ फर्क न पड़ेगा। हमारे भीतर की बेचैनी हमारे भीतर

के दु:ख, तनाव वैसे ही रहेंगे।

ऊपर–ऊपर की सतह को देखती रही और सागर में परम धन छिपा था, उसका मुझे पता ही न था। जिन्दगी का यह समय, यह अवसर हाथ से निकल गया। अधिकांश लोगों को मृत्यु के क्षण में अहसास होता है कि उनकी जिन्दगी बेकार गई। लेकिन तब कोई फायदा नहीं पता चलने से। क्योंकि अब कुछ किया नहीं जा सकता। क्योंकि अब कोई समय नहीं है, अवसर नहीं है। समझदार और विवेकवान व्यक्ति वह है– जिसको जिन्दगी के बीच में ही इस बात की प्रतीति हो जाए कि मैं जो कर रहा हूँ, वह उपयोगी जरूर है लेकिन बहुत सार्थक नहीं है। कामचलाऊ है, ठीक है। मकान बनाना पड़ेगा रहने के लिए। वे तो पक्षी भी घोंसला बनाते हैं। भोजन–पानी का इंतजाम करना पड़ेगा। वे तो गाय–भैंस भी कर लेती हैं। मछलियाँ भी कर लेती हैं और तो और पेड़–पौधे भी कर लेते हैं जिनके हाथ–पैर नहीं हैं। जमीन में जो गड़े हैं; वहीं उनको पानी भी मिल जाता है। वहीं धूप की किरणों में उनका भोजन भी पक जाता है। अगर हमने सिर्फ रोजी–रोटी ही कमाई, सिर्फ मकान ही बनाया, बस अपने शरीर का ही इंतजाम करते रहे, तो हम पशुओं से ज्यादा बेहतर स्थिति में तो न हुए। ये तो सभी कर रहे हैं। मक्खी और मच्छर भी कर लेते हैं। वे भी भोजन–पानी का इंतजाम कर लेते हैं। वे भी बच्चे पैदा कर जाते हैं। वे भी अपनी सन्तानें पीछे छोड़ जाते हैं। फिर मनुष्य की गरिमा और महिमा क्या है? मनुष्य की गरिमा और महिमा यही है कि वह अपनी अन्तर्आत्मा में प्रवेश करके स्वयं को जान सकता है, आत्मज्ञान प्राप्त कर सकता है। किसी अन्य पशु–पक्षी की योनि में यह संभव नहीं है। कोई जानवर परमात्मा को नहीं जान सकता। यह अवसर हमें केवल मनुष्य योनि में मिलता है। अगर हमने इस अवसर को गँवाया तो हम एक बड़े मौके से चूक गए।

तो प्यारे मित्रो, जीवन की सतह पर सबकुछ जरूरी है। शिक्षा प्राप्त करना, नौकरी करना, दुकान चलाना, मकान बनाना, घर–गृहस्थी बनाना, शरीर के स्वास्थ्य के लिए इंतजाम करना। लेकिन यह सब ऊपर–ऊपर है। सिर्फ इतना करने से जीवन में कोई शान्ति और आनन्द नहीं मिलेगा। मैं

आपसे कुछ कहने आया हूँ। एक छोटा-सा संदेश देने आया हूँ। कबीर साहब के वचन के माध्यम से कि थोड़ा गहराई में जाना और वह गहराई कहीं बाहर नहीं है। वह गहराई हमारे स्वयं के भीतर है। हमारे भीतर परमात्मा मौजूद है। मैं आपसे नहीं कहता कि मंदिर, मस्जिद में जाकर पूजा-पाठ करना। मैं आपसे नहीं कहता कि तीर्थ स्थानों में जाकर गंगा स्नान करना। मैं आपसे किन्हीं क्रियाकांड करने के लिए नहीं कह रहा। मैं आपसे मंत्र जाप करने को नहीं कह रहा। न मैं आपसे कहता कि शास्त्रों का अध्ययन करो, कि गीता रटो, कि कुरान पढ़ो। मैं तो बस छोटी-सी बात कहता हूँ कि अपने भीतर ध्यान में डूबने की कला सीख जाओ। भीतर ध्यान में डूबते-डूबते समाधि लग जाती है। भीतर परमात्मा से मिलन होता है और तब जिन्दगी में आनन्द ही आनन्द हो जाता है। बाहर की सतह पर तब भी सब कुछ वैसा ही चलेगा आपकी दुकान, कि आपकी नौकरी, कि आपका परिवार पहले से और भी ज्यादा सुन्दर तरीके से चलेगा। क्योंकि आपकी अन्तर्आत्मा आनन्द से ओतप्रोत हो जाएगी। अभी आप सब कुछ करते हैं। लेकिन कर्त्तव्य की भांति, ड्यूटी की तरह निभाते हैं। अभी उसमें मजा नहीं है। एक बार भीतर का आनन्द मिल गया, तो बाहर के छोटे-छोटे कृत्यों में भी वह आनन्द छलकने लगता है। फिर ड्यूटी की तरह आप नहीं निभाएँगे। इस जिन्दगी के एक-एक क्षण में आनन्द ओत-प्रोत हो जाएगा। तो कबीर साहब का यह वचन अपने हृदय में स्मरण रखना।

'जिन खोजा तिन पाइयां।'

जो खोजते हैं उन्हें मिल जाता है। परमधन मिल जाता है। बस थोड़ी-सी खोजबीन करनी पड़ती है। कई लोग मुझसे पूछते हैं कि आत्मा-परमात्मा की बातें धर्मगुरु क्यों करते हैं? आत्मा दिखाई नहीं देती, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। जो अदृश्य है, जो दिखाई नहीं पड़ता, जिसको छू नहीं सकते। उसका इतना महत्व क्यों? मैं उन लोगों से कहता हूँ कि एक वृक्ष को देखो। शाखाएँ दिखाई पड़ती हैं, तना दिखाई पड़ता है। पत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। फूल और फल दिखाई पड़ते हैं। लेकिन क्या आप जानते हैं वृक्ष में सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्या है? न तो पत्ते, न फूल, न फूलों की सुगन्ध, सबसे महत्वपूर्ण है पेड़ की

जड़। अभी थोड़े दिन पहले बसन्त आया। नई कोपलें फूट आईं। सब पेड़ फिर हरे-भरे हो गए। दो महीने पहले पतझड़ था। सब पत्ते झड़ गए थे। लेकिन पेड़ का कोई नुकसान नहीं हुआ था पत्तों के झड़ जाने से। फूलों के मर जाने से पेड़ का कोई नुकसान नहीं हुआ। क्योंकि जड़ें सुरक्षित थीं। लेकिन अगर जड़ें मर जाएँ फिर पेड़ न बचेगा। वे जड़ें जो दिखाई नहीं देतीं जमीन में गड़ी हैं। जिनका हमें पता भी नहीं चलता कि वे हैं। उन्हीं के ऊपर पेड़ों के जीवन का आधार टिका है। ऊपर जो दिखाई दे रहा है वह उसकी सतह है। मैं जिसको संसार कह रहा हूँ वह परमात्मा की सतह है और जिसे मैं आत्मा-परमात्मा कह रहा हूँ वह संसार की गहराई है। संसार और परमात्मा में विरोध नहीं है। जैसे सागर की सतह और उसकी गहराई में कोई विरोध नहीं है। एक ही तत्त्व है। उसी का एक ऊपरी हिस्सा है, एक उसका भीतरी हिस्सा है।

अब जैसे हमारा शरीर है। ऊपर से चमड़ी है, त्वचा है हमारी, भीतर हड्डियाँ हैं, माँस-मज्जा है। इनमें आपस में कोई विरोध तो नहीं है। सब आपस में जुड़े हुए हैं। हमने बाहर का भोजन लिया, वह हमारे पेट में चला गया, हमारे खून में चला गया। हमारी हड्डी, माँस-मज्जा बन गया। बाहर और भीतर में कोई विरोध तो नहीं है। अभी लंच आपने लिया। थोड़ी देर पहले वे दाल, चावल, अनाज सब्जी थे। दो घण्टे बाद वे आपके शरीर का खून बन गए, आपकी हड्डी माँस-मज्जा बन गए। आपके मस्तिष्क में पहुँच गए, विचार बन गए। पदार्थ में, विचार में, आत्मा में कोई विरोध नहीं है; सब चीजें जुड़ी हुई हैं। बस ऐसे ही समझना सतह और गहराई। शरीर हमारी सतह है, मन उसके भीतर है। उसके और गहराई में हमारी आत्मा है। आत्मा के केन्द्र में परमात्मा है। जैसे पेड़ के हजारो पत्तें हैं। गहराई में जाएं तो तना है और गहराई में जाएं तो जड़ें हैं। यद्यपि दिखाई नहीं पड़तीं, लेकिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण वही हैं और इसलिए परमात्मा की खोज का इतना महत्व है। उसको जाने बगैर, अपनी जड़ों से परिचित हुए बगैर हमारा जीवन ऊपरी-ऊपरी बड़ा सुपरफिशियल और उथला-उथला होगा। जीवन की जो असली सम्पदा है, उससे हम चूकते ही चले जाएंगे। इसलिए आपको

निमंत्रण देने आया हूँ। ध्यान की गहराई में डूबने के लिए, समाधि में परमात्मा को जानने के लिए, अपनी आत्मा को पहचानने के लिए और मामला बड़ा सरल है। क्योंकि हम जिसे पाने चले; वह बाहर नहीं है। राष्ट्रपति बनना कठिन होगा। हनुमानगढ़ के सबसे अमीर आदमी बनने की कोशिश कठिन होगी। जरूरी नहीं कि आप जिंदगी भर मेहनत करें तभी आप बन पाएं। शायद बन पाएं, शायद न बन पाएं। नोबल पुरस्कार प्राप्त करना कठिन होगा। लेकिन मैं जो कह रहा हूँ, वह बहुत ही सरल है।

अतीत में न जाने कैसे हमारी धारणा बन गई कि परमात्मा को पाना बहुत कठिन है। मैं आपसे विनती करता हूँ कि नहीं, यह हमारी धारणा गलत है। कहीं कुछ भूल-चूक हो गई हमारे समझने में। आत्मा को पाना कैसे कठिन हो सकता है। आत्मा अर्थात् मेरा स्वयं का होना आत्मा यानि सैल्फ, खुद का होना। तो खुद का होना कैसे कठिन हो सकता है। वह तो मैं स्वयं ही हूँ। बस उस तरफ नजर फेरने की बात है। जरा बहिर्मुखी चेतना को एक्सट्रोवर्ट कॉन्शेस को अन्तर्मुखी करने की बात है। इन्ट्रोवर्ट अन्तर्मुखी हम हो जाएं और आत्मज्ञान फलित हो जाता है।

प्रश्न- एक मित्र ने पूछा है कि भगवान रजनीश की मूलधारणा रही है कि किसी का अनुसरण मत करना? कृपया इसको स्पष्ट करने की कृपा करें?

जैसे मैंने अभी-अभी कहा कि स्वयं को जानें। तो स्वयं को जानना दूसरे की नकल करके नहीं हो सकता। अनुसरण का अर्थ है- दूसरे की नकल करना। अगर हम दूसरे की नकल करेंगे, किसी को हम आदर्श बना लेंगे। उसके जैसे होने की कोशिश करेंगे। तब तो हम स्वयं के होने से वंचित हो जाएंगे। एक गुलाब का पौधा कल्पना करने लगे, सोचने लगे कि मैं चम्पा का पेड़ बन जाऊँ। चम्पा जैसे होने की नकल में अगर वह पड़ गया, अपनी जड़ों को तो भूल ही जाएगा। ठीक से फिर गुलाब भी नहीं हो पायेगा। इसलिए अनुसरण नहीं करना। हर व्यक्ति अद्वितीय और अनूठा है। एवरीबॅडी इज यूनीक। कोई भी दो आदमी समान नहीं हैं। आजतक दो लोगों को कभी

समान देखा? छः अरब लोग दुनिया में हैं आज। दो आदमियों के अगूँठे के निशान भी नहीं मिलते और बड़ी-बड़ी बातें तो छोड़ों। छोटी-सी बात अँगूठे का निशान तक नहीं मिलता। आज तक आपके जैसा व्यक्ति कभी नहीं हुआ, न आज है, न कभी होगा।

इसलिए दूसरे की नकल करने से तो हम स्वयं के जीवन से वंचित ही हो जाएंगे और दूसरे किसी की नकल करने का अर्थ नहीं। क्योंकि हम दूसरों के जैसे कभी हो नहीं सकते। यह असम्भव बात है। गुलाब का पौधा अगर कमल का फूल बनने की कोशिश करने लगे तो कमल तो नहीं हो पाएगा, गुलाब होने से भी चूक जाएगा। इसलिए ओशो का यह कहना है। उनकी मूल शिक्षाओं में एक है कि हर व्यक्ति को स्वयं होना है। स्वयं को जानना है। इसलिए दूसरे की नकल से बचना।

अभी परसों मैं एक चुटकला सुन रहा था। एक आदमी हुआ मुल्ला नसरूद्दीन। आपने ओशो के प्रवचनों में सुनी होगी नसरूद्दीन की कहानी। शराबी था। शराबघर में रात तक शराब पीता रहा। जब बाहर निकला तो रात के बारह बज गए थे। जोर का आंधी तूफान आया था। उसने अपनी कार स्टार्ट की तब पता चला कि कार की हैडलाइट आंधी-तूफान में वर्षा में खराब हो गई है। अब बड़ी मुश्किल हो गई घर कैसे जाए। लाइट नहीं जल रही? उसने सोचा जैसे कि हम सभी सोचते हैं। उसने सोचा कि कोई कार निकलेगी उसके पीछे-पीछे मैं भी अपनी कार लेता जाऊँगा। वही अनुसरण दूसरे के पीछे चलना। हमें खुद दिखाई नहीं देता। हमारी आँखें खराब हैं, हमारी हैडलाइट खराब है। हम सोचते हैं चलो। बुद्ध को तो दिखाई देता था, महावीर को तो दिखाई देता था। राम तो आदर्श पुरुष हैं। चलो महात्मा गाँधी की नकल कर लें, कि विवेकानन्द की ही नकल कर लें। उन जैसे हो जाएं। उनकी लाइट तो जल रही है। नसरूद्दीन का भी वही तर्क। उसने सोचा कि अपनी कार दूसरी किसी कार के पीछे लगा दूँगा। उसकी रोशनी में मैं भी चला चलूँगा। शराब के नशे में धुत एक कार के पीछे उसने अपनी कार लगा दी। चलाता गया, चलाता गया। अचानक सामने वाले आदमी ने कार रोक

दी। नसरूद्दीन की कार जाकर उससे टकराई। नसरूद्दीन को बहुत गुस्सा आया। उतरकर उससे कहा कि आपको ड्राइविंग लाइसैंस किसने दिया? कुछ अक्ल है कि नहीं। गाड़ी के असूल नहीं जानते। गाड़ी रोकने से पहले हाथ देना था, इंडिकेटर जलाना था। अचानक आपने गाड़ी रोक दी। बिना इशारा किए, बिना संकेत दिए। उस आदमी ने नसरूद्दीन की कालर पकड़कर कहा कि तुम नशे में धुत हो। क्या मुझे अपने गैरेज में भी इंडिकेटर जलाना पड़ेगा। तुम यहाँ घुस कैसे आए? यह मेरा घर है। मेरा गैरेज है।

बेहोशी में हमारा तर्क यही होता है। हमें समझ नहीं है। हमारे पास विवेक नहीं है। चलो हम उनकी नकल करें, जिनके पास बुद्धि है, जिनके पास प्रतिभा है। जिनकी आँखों में रोशनी है, लेकिन याद रखना मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि विवेकानन्द गलत हैं, कि भगवान राम गलत हैं, कि बुद्ध गलत हैं, कि महावीर गलत हैं। लेकिन वे अपने-अपने घर पहुँचे हैं और आप उनके पीछे चलके आप अपनी जड़ों तक नहीं पहुँच सकते। आप हमेशा दूसरे के घर पहुँच जाएंगे। वह आपके जीवन का गंतव्य नहीं है। आपके जीवन की मंजिल स्वयं आप है। बुद्ध ने किसकी नकल की थी बताओ। बुद्ध जैसा व्यक्ति तो पहले कोई भी नहीं हुआ। कृष्ण ने किसकी नकल की थी। किसी की भी नहीं। कृष्ण पहले व्यक्ति हैं इस प्रकार के। न उनके पहले कभी कोई ऐसा हुआ था, न कभी कोई बाद में वैसा हुआ। राम ने किसकी नकल की थी? किसी की भी नहीं। अगर तुम नकल करोगे तो तुम रामलीला के नौटंकी राम हो जाओगे। असली राम नहीं हो सकते। असली राम स्वयं यूनीक अद्वितीय थे। उन्होंने कभी किसी की नकल नहीं की। तो राम से, कृष्ण से, नानक से, कबीर से, ओशो से एक बात तो कम से कम सीखो। इन लोगों ने किसी की नकल नहीं की। इन्होंने किसी का अनुसरण नहीं किया। ये अपनी जिन्दगी अपनी मौज से, अपने विवेक से, अपनी बुद्धि से जीए। अगर सीखना है तो यही बात सीखो। इसलिए आपने ठीक सवाल किया है कि भगवान रजनीश की मूल धारणा है कि अनुसरणगामी मत बनो। क्योंकि अनुसरण करके हम कभी भी अपनी जीवन

की मंजिल को अर्थात् स्वयं को प्राप्त नहीं कर सकते। हमारी नजर दूसरे पर होगी। हम किसी और को आदर्श मान लेंगे। फिर हम भटक जाएंगे।

प्रश्न- परमानन्द पाने हेतु कौन-सा मार्ग सरल, तीव्र और सटीक है। जैसे- ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग अथवा योग मार्ग, सेवा मार्ग?

मार्ग तो सब सही होते हैं। असली सवाल चलने वाले का होता है। मैं हजारों लोगों से मिलता हूँ धीरे-धीरे एक बात मुझे साफ हो गई। भूलचूक मार्ग में नहीं होती। भूलचूक चलने वाले में होती है। पहुँचने वाले भक्ति मार्ग से भी पहुँच गए, ज्ञान मार्ग से भी पहुँच गए, सांख्य मार्ग से भी पहुँच गए, तंत्र से भी पहुँच गए, संन्यास मार्ग से भी पहुँच गए, कर्म योगी बन कर भी पहुँच गए और नहीं पहुँचने वाले हर रास्ते पर भटक गए। मैं देखता हूँ लोगों को अति कर्मठ। वे कहते हैं- अपने आप को कर्म योगी और योग का उनके जीवन में कोई भी लक्षण नहीं है। वे सिर्फ कर्मठ हैं। वर्कोहोलिक हैं। जैसे अल्कोहोलिक होते हैं न, ऐसे कुछ लोग वर्कोहोलिक हैं दिन-रात कुछ न कुछ करते ही रहते हैं। उनसे पूछो वे तो कहेंगे हम तो कर्मयोगी हैं। भ्रांति में हैं। योग की साधना उन्होंने नहीं की है। वे सिर्फ ओवर एक्टिव हैं। अभी आज सुबह मैं सिरसा में मंद बुद्धि बच्चों का स्कूल देखने गया था। वहाँ के प्रिंसिपल मुझे बता रहे थे कि कुछ बच्चे हाइपरऐक्टिव होते हैं। मैन्टिली रिटार्डिड हैं, लगातार कुछ न कुछ करते ही रहते हैं। हाइपरएक्टिव। ये लोग अपने आप को कर्मयोगी कहने लगेंगे। लेकिन हैं ये विक्षिप्त। ये लोग शांति से बैठ नहीं सकते। ये भटक जाएंगे। याद रखना कर्मयोग का मार्ग नहीं भटकाता। चलने वाला अगर मूर्च्छित है, अगर बेहोश है तो वे कर्मयोग से भटक जाएगा।

भक्ति योग का मार्ग नहीं भटकाता। लेकिन कोई सोचे कि बस... भक्ति, पूजा-पाठ, आरती उतार ली, फूल चढ़ा दिया कि भगवान की मूर्ति को भोग लगा दिया। बस यही भक्ति है। यह आदमी भटक जाएगा। याद रखना भगवान ने किसी को नहीं भटकाया। मूर्त से अमूर्त की ओर अगर

जाता, आकार से निराकार की ओर आगे बढ़ता तो भक्ति पहुँचाने वाली बन जाती। लेकिन यह मूर्त में अटक गया। आकार में भटक गया। तो भक्ति ने नहीं भटकाया, इसकी मूढ़ता ने इसको भटकाया है।

ठीक इसी प्रकार तंत्र का मार्ग है भोग के द्वारा साक्षी भाव में प्रवेश। अधिकांश तांत्रिक दुनिया में मिलेंगे। वे केवल भोग में भटक गए हैं। साक्षी भाव का अता–पता भी नहीं है। योग का तो सवाल ही नहीं। कहने को कहेंगे कि हम तो तांत्रिक हैं। तंत्र की साधना कर रहे हैं। किन्तु वास्तव में वे केवल भोग में निमग्न हैं बस। कोई साधना नहीं कर रहे हैं। तो मत पूछें कि ज्ञान मार्ग सही कि भक्ति मार्ग। मैं जानता हूँ बहुत लोगों को दिन–रात शास्त्रों का अध्ययन करते रहते हैं। बड़े विद्वान हैं, बड़े तर्कशील हैं। अपने आप को बुद्धिजीवी कहते हैं। कई–कई ग्रन्थों का अध्ययन कर चुके हैं। कई ग्रन्थ उनको कंठस्थ हैं। लेकिन पहुँचे कहीं भी नहीं। सिर्फ खोपड़ी में बोझ बढ़ गया है विचारों का, सिद्धान्तों का, शास्त्रों का। पहुँचे कहीं भी नहीं हैं। अब यह मत कहना कि ज्ञान मार्ग ने इनको भटका दिया है। मार्ग तुम्हें कैसे भटकाएगा। तुमने भटकने की ठान ही ली है; तब तो हर मार्ग भटका देगा। मार्ग कहीं थोड़े ही भटकाता है।

मैंने सुना है मुल्ला नसरूद्दीन जा रहा था कार से कहीं। एक चौराहे पर एक पान की दुकान पर उसने रुक कर पूछा। यह सामने वाला रास्ता कहाँ जाता है। उस पनवाड़ी ने कहा कि यह सामने वाला रास्ता कहीं नहीं जाता। नसरूद्दीन ने कहा कि हद हो गई। रास्ता कहीं नहीं जाता। उस पनवाड़ी ने कहा कि मैं पिछले पच्चीस सालों से यहाँ दुकान खोले हूँ। यह रास्ता पिछले पच्चीस सालों से यहीं पड़ा है। रास्ता कहीं नहीं जाता। वही मैं आपसे कह ना चाहता हूँ कि कोई मार्ग न कहीं जाता है, न कहीं ले जाता है, न भटकाता है। चलने वाले पर निर्भर है। तुम होशपूर्वक चलोगे, तो मंजिल को पा लोगे। वह मंजिल तुम्हारे भीतर है और अगर तुम बेहोश हो, मूर्च्छित हो हर रास्ता तुमको भटका देगा। इसमें रास्ते का कोई दोष नहीं है। शराब पीकर चलता आदमी, डगमगाता, लड़खड़ाता कहीं न कहीं गड्ढ़े में गिरेगा। हर रास्ते पर गड्ढ़े हैं।

ऐसा कोई मार्ग नहीं जिस पर गड्ढ़े न हों, जिस पर खतरे न हों। हर मार्ग के अपने खतरे हैं। भक्ति के अपने खतरे हैं। ज्ञान मार्ग के अपने खतरे हैं। तंत्र के अपने खतरे हैं। हर जगह कुछ न कुछ खतरा मौजूद है। संभल-संभल कर जो चलेगा, वह मंजिल तक पहुँच जाएगा। तो फिर मुख्य बात क्या हुई। अन्ततः आपका होश, आपका विवेक, आपका संभलना। आपका जागरूक रहना ज्यादा महत्वपूर्ण है। मार्ग महत्वपूर्ण नहीं है। इसलिए मैं जोर नहीं देता कि कौन-सा मार्ग चुनो। जो तुम्हारी मौज हो, वह चुन लेना। लेकिन मुख्य बात यह है होशपूर्वक, संभलकर, एक-एक कदम फूंक-फूंक कर चलना है। असली बात यह है कि तुम जो चाहो मार्ग चुन लो, जो तुम्हें भाए।

प्रश्न- ध्यान शिविरों में आने के बाद कुछ दिनों तक प्रसन्नता का भाव बना रहता है। फिर धीरे-धीरे शिथिलता आ जाती है और वह खुशी और आनन्द खो जाता है। कृपया बताएं कि ऐसा न हो। मार्ग दर्शन करें?

जब आप ध्यान शिविर करने आते हैं, वहाँ एक माहौल होता है, एक वातावरण होता है और सौ पचास साधक-साधिकाएँ, सभी अंतर्यात्रा पर चल रहे हैं, सभी ज्ञान की खोज में आए। उस वातावरण में, उस परिवेश में एक मूमेन्टम पैदा होता है। आप भी गति कर जाते हैं, अपने भीतर। अकेले में यह करना थोड़ा मुश्किल होगा। संघ में आसान हो जाता है जैसे स्कूल में बच्चे पढ़ने जाते हैं। पढ़ाई तो घर में भी कर सकते हैं अकेले। लेकिन अकेले करना मुश्किल होगा। स्कूल में एक माहौल है। हॉस्टल में आप रह रहे हैं, निश्चित रूप से वहाँ एक माहौल है। सभी लोग वही पढ़ाई करने के लिए ही आए हैं। एक दूसरे के मददगार साबित होंगे। एक बच्चे से नहीं बन रहा सवाल, वह किसी सीनियर से पूछ लेगा। अपने सहपाठी से पूछ लेगा। कोई उसकी मदद कर देगा। स्कूल में, हॉस्टल में पढ़ाई का एक माहौल है। वहाँ पढ़ाई ज्यादा आसान है। इसका यह मतलब नहीं है कि घर में नहीं हो सकती। घर में भी होगी लेकिन थोड़ी-सी और ज्यादा मेहनत। थोड़ी और सिनसिएरिटी। घर पर भी हो जाएगी। थोड़ी-सी और कुशलता। थोड़ी-सी

और बुद्धिमानी से चलना होगा।

तो निश्चित रूप से जब आप आश्रम में आते हैं, ध्यान शिविर अटैन्ड करते हैं। वहाँ मामला आसान है। क्योंकि एक सामूहिक ऊर्जा बन जाती है। वैज्ञानिक उसे कहते हैं कलैक्टिव कान्शेसनैस, एक सामूहिक चेतना काम करने लगती है। घर में आप अकेले पड़ जाते हैं। घर में और दूसरे लोग हैं वे अलग-अलग दिशाओं में यात्रा कर रहे हैं। वहाँ एक खींचातानी चल रही है। आपकी ऊर्जा पूरी-पूरी अन्तर्मुखी नहीं हो पाएगी। घर में फिर दूसरी और जिम्मेवारियाँ भी हैं। दूसरे काम भी हैं। जब आप आश्रम में आए तो वहाँ दूसरा कोई काम न था। न आपको घर की सफाई करनी थी, न आपको भोजन बनाना था, न आपको कपड़े धोने थे। आप अपना सूटकेस भरकर लाए थे छः दिन के कपड़ों का। न आपको दुकान जाना था, न कोई नौकरी करनी थी, न कोई ड्यूटी करनी थी। वे दस दिन आपके छुट्टी के दिन थे। वे छः दिन आपने सुबह से शाम तक साधना में डिवोट कर दिए। तो जैसी गहराई वहाँ आएगी। वैसी गहराई घर में तो नहीं आ सकेगी।

दूसरी बात आश्रम में या ध्यान शिविर में आकर आपने जो सीखा है। उसे ऐसा समझना जैसे कोचिंग क्लास में जाकर आपने शिक्षा ग्रहण की। संसार में घर-गृहस्थी में आकर जो आपकी जिन्दगी है, उसको आप परीक्षा हाल समझना। असली परीक्षा होगी घर में। कोचिंग क्लास में जो सीखा है। वहाँ एग्जामिनेशन नहीं होता कोचिंग क्लास में। वहाँ तो सिखाने वाले ने आपको सिखा दिया। हमने आपको बता दिया अब अपने घर जाओ। घर में आपके परीक्षक हैं। माता-पिता और पति-पत्नी, बच्चे और पड़ोसी, दुकान में और अन्य लोग, ऑफिस के लोग। ये सब आपके एग्जामिनर हैं। अब परीक्षा यहाँ होगी, आप जो शांति का सबक सीख कर यहाँ आए हैं। क्या वास्तव में आप शांत हुए? अब पता चलेगा। आश्रम में तो कोई आपसे लड़ाई-झगड़ा करने वाला नहीं था, तो पता कैसे चलेगा कि शांति हुई कि नहीं? घर में जब सास-बहू की बहस होगी, जब बाप-बेटे के भीतर कलह होगी, जब ऑफिस में बॉस और सब-ऑर्डिनेट की मुठभेड़ होगी, तब पता चलेगा कि क्रोध

आता है कि नहीं आता। आश्रम में कैसे पता चलेगा कि क्रोध आता है कि नहीं आता? इसलिए संसार को आप परीक्षा भवन समझना और यहाँ पर आकर आप बार-बार परीक्षा देना। यहाँ पता चलेगा कि आप सफल हुए हैं कि असफल हुए हैं, कि वास्तव में आपने कोई सबक सीखा कि भ्रांति, धोखे में आ गए। इसलिए सब मुझसे कहते हैं कि आश्रम में रख लीजिए, सेवा करेंगे, काम करेंगे। मैं कहता हूँ कि नहीं कोचिंग क्लास में थोड़ी देर के लिए जाया जाता है। कोचिंग क्लास रहने की जगह थोड़े ही है। असली परीक्षा तो संसार में होगी। यहाँ हमने तुमको प्रेम और करुणा का पाठ सिखाया। अब आके संसार में बताओ कि वास्तव में तुम्हारे भीतर करुणा, प्रेम, सद्भाव पैदा हुए कि नहीं। जो शांति और ध्यान तुमने सीखा, वह बरकरार रह पाता है कि नहीं रह पाता। तो आपका प्रश्न मैं समझ रहा हूँ आप कह रहे हैं कि संसार में आकर धीरे-धीरे आनन्द का भाव शिथिल पड़ जाता है। कोई बात नहीं फिर-फिर पकड़ो। फिर गहराई में डूबो। साल में दो बार, तीन बार समाधि शिविर करने आ जाना। फिर से कोचिंग क्लास अटैन्ड करना। फिर अपने भीतर की गहराई पकड़ना, फिर वापस अपनी घर-गृहस्थी संभालना।

प्रश्न- अगर परमात्मा करुणावान है, तो इतने दु:ख क्यों हैं?

वह करुणावान है। इस बात को थोड़ा समझना। ये जो दुःखों की परिस्थितियाँ हैं, ये हमें जगाने के लिए हैं। इन दुःखों में रहते हुए हम सुख का, आनन्द का, शांति का मार्ग खोज पाएं। तभी तो हमारे भीतर विवेक का विकास होगा। कीचड़ में कमल खिलते हैं, तो कीचड़ को दुर्भाग्य मत समझना। कमल खिलने की संभावना ही कीचड़ में है, कीचड़ कमल की दुश्मन नहीं है। कीचड़ ही सहयोगी है, कमल को पैदा करने के लिए। तो संसार की ये जो कीचड़ है, जहाँ ईर्ष्या है और द्वेष है, तनाव है, दुःख है, अशांति है, बेचैनी है, महत्वकांक्षाएँ हैं, प्रतिस्पर्धाएँ हैं, भाँति-भाँति की

तकलीफें हैं इन तकलीफों के बीच से गुजर के अगर हम शान्त हो पाएं, प्रेमपूर्ण हो पाएं, माना कि सब तरफ लोग शत्रुता निभा रहे हैं और फिर भी हम मंगलकामना से भर पाएं, तब जानना की वास्तव में हमने कुछ कमाया। अगर सब लोग तुम्हारे मित्र ही होते और तुम दोस्ती के भाव में जी रहे हो। तो इसमें तुम्हारी क्या खूबी? अगर सब लोग तुम्हारा सहयोग करते। कोई तुमसे दुश्मनी न करता, कोई तुम्हारे प्रतिकूल परिस्थिति पैदा न करता। कोई तुम्हें क्रोध न दिलाता। कोई तुम्हारे जीवन में हस्तक्षेप न करता और तब तुम शान्त रहते तो इसमें तुम्हारी क्या खूबी? तुम्हारी खूबी तो तभी है, जब तुम इन सारी अशांतियों के बीच में शान्ति का मार्ग निकाल लो। इसी दुनिया में कोई बांसुरी बजाते हुए उत्सव मनाता है। इसी दुनिया में कोई गौतम बुद्ध परम शान्ति को उपलब्ध हो जाता है। इसी दुनिया में कोई नानक और मरदाना गीत गाते हैं। जहाँ हम सिवाय गालियाँ देने के अलावा कुछ नहीं करते, इसी दुनिया में कोई गीत गाने वाले भी पैदा होते हैं। याद रखना, उनकी परिस्थिति हमसे ज्यादा भिन्न नहीं थी। वे भी हमारे जैसे थे। फिर उन्होंने कहाँ से यह कला सीखी। कैसे उनके जीवन में प्रसन्नता आ गई। कैसे उनके जीवन में गीत फूटे। प्रतिकूल परिस्थितियों में ही विकास होता है। तो इसलिए आपने जो सवाल पूछा है कि अगर परमात्मा करूणावान है तो इतने दु:ख क्यों? मैं आपसे कह रहा हूँ कि परमात्मा करूणावान है, इसीलिए इतने दु:ख हैं। वह वास्तव में हमारी परीक्षा ले रहा है। अगर दु:ख न होते, तो हमारा विकास न होता। इस बात को खूब अच्छे से समझना। दुनिया में आंकड़ें बताते हैं कि दुनिया में जितने भी प्रतिभाशाली लोग हैं, जीनियस हैं। उसमें से नब्बे प्रतिशत गरीब घरों से, या मिडिल क्लास फैमिली से आते हैं। नब्बे प्रतिशत बहुत बड़ा अंक होता है। नाइंटी परसैन्ट प्रतिभाशाली लोग मध्यम वर्ग से या निम्न वर्ग से आते हैं। होना तो उलटा चाहिए। अमीरों के बच्चों को बहुत प्रतिभाशाली होना था। लेकिन ऐसा नहीं होता क्यों? क्योंकि अमीरों के बच्चों को सारी सुख-सुविधाएँ मिलीं। कोई प्रतिकूल परिस्थिति नहीं है, कोई कठिनाई नहीं है। जरूरत से ज्यादा ही मिला है। जितना उनको जरूरत उससे बहुत ज्यादा

एवेलेबल है। कोई कठिनाई उनकी जिन्दगी में नहीं है। गरीब के बच्चे को हर तरह से मुश्किल है। स्कूल में भर्ती होने के लिए स्कूल की फीस नहीं है। किताब खरीदने के लिए पैसे नहीं हैं। हर प्रकार की कठिनाई ही कठिनाई है।

मुझे अपनी याद आती है। मैं बी० एस० सी० फर्स्ट ईअर जहाँ से पढ़ा। जिस मकान में मैं रहता था, वहाँ बिजली भी नहीं थी। लालटेन में पढ़ता था और लालटेन में पढ़ना भी मुश्किल था। क्योंकि नदी के किनारे पर झोपड़ी थी। लालटेन जलाने से ही बहुत कीड़े-मकौड़े आ जाते थे। नदी के किनारे कीड़े-मकौड़े बहुत होते हैं। इतने कीड़े-मकौड़े आ जाते थे कि बैठना भी मुश्किल। पढ़ाई भी बहुत मुश्किल थी। बिजली न होने की वजह से दिन को पंखा नहीं, दिन में भयानक गर्मी। अप्रैल में परीक्षा होती है, भयानक गर्मी के दिनों में। दिन भी मुश्किल, रात भी मुश्किल। लेकिन उस कठिनाई में, उस प्रतिकूल परिस्थिति में पढ़ कर मैंने यूनिवर्सिटी में टॉप किया, गोल्ड मैडल लिया। हमारे विकास के लिए कठिनाइयाँ जरूरी हैं। पूरा इतिहास इस बात का गवाह है। सारे जीनियस, सारे प्रतिभाशाली लोग प्रतिकूल परिस्थितियों में पैदा होते हैं और इसलिए परमात्मा करुणावान है और इसलिए उसने इतने दु:ख बनाए हैं। उनके प्रति धन्यवाद से भरना। अगर ये मुसीबतें न होतीं, तो फिर हमारे भीतर प्रतिभा का विकास नहीं होता।

अगर आप मनुष्य जाति के इतिहास पर गौर करें और अन्य पशु-पक्षियों से तुलना करें, तो आप देखेंगे मनुष्य सबसे कमजोर है। एक कुत्ते से भी हम नहीं जीत सकते निहत्थे। शेर और चीते और हाथी की तो बात छोड़ दो। एक आदमी एक कुत्ते से भी नहीं जीत सकता एक जंगली कुत्ते से। हम कितने कमजोर हैं। न उनके जैसे नाखून हमारे पास हैं, न उनके जैसे पैने दाँत हमारे पास हैं, न उतनी भाग-दौड़ करने की क्षमता है। एक हिरन दौड़ रहा हो तो हम उसका पीछा नहीं कर सकते। हमारे पैरों में उतनी ताकत नहीं है, जितनी हिरन के पैरों में है। एक बंदर जैसी छलाँग मार सकता है एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर। किसी आदमी के अन्दर उतनी ताकत नहीं है, एक डाल से दूसरी डाल छलाँग मारता जाए। हम पहली ही छलाँग में नीचे

धड़ाम से गिर पड़ेंगे, फैक्चर कर बैठेंगे। बंदर कभी नहीं गिरता पेड़ से।

हम कई मामलों में पिछड़े हुए हैं। कुत्ते के पास सूंघने की जैसी क्षमता है। हमारे पास वैसी क्षमता नहीं। हमारी नाक बड़ी कमजोर है। घोड़ा जितना अच्छा सुनता है, हम बस उससे एक बटा पाँच हिस्सा सुनते हैं । हमारे कान बहुत कमजोर हैं। घोड़े की सुनने की क्षमता बहुत तेज है। अल्ट्रासाउंड वेव्स सुनते हैं चमगादड़ पक्षी। जो रात को अंधेरे में घूमती हैं। हम अल्ट्रासाउंड नहीं सुन सकते। उसको अल्ट्रासाउंड वेव्स भी सुनाई पड़ती हैं। मक्खी की आखें चारों दिशाओं में देखती हैं एक साथ। सामने भी, पीछे भी, बाएं भी, दाएं भी सब तरफ। इसलिए मक्खी को मारना बड़ा मुश्किल है। आप पीछे भागते जाओ। आप सोचते हैं उसको पीछे दिखाई नहीं देता। उसको सब तरफ दिखाई देता है। हमारी आँख बड़ी कमजोर है। बस सामने थोड़ा-सा रेंज है। उतना ही दिखाई देता है हमको।

मनुष्य के दो- ढाई साल में एक बच्चा होता है। मच्छर प्रतिदिन ढ़ाई सौ बच्चे देता है। हम कई मामलों में बिल्कुल पिछड़े हुए हैं। बैकटीरिया और वाइवा समझो ज्यादा ताकतवर हैं। एक टी० बी० का छोटा-सा कीटाणु जिसको माइक्रोस्कोप में देखना भी कठिन है और गामा पहलवान की छुट्टी कर देता है। होंगे गामा पहलवान ओलम्पिक में जीते। टी० बी० के किटाणु से नहीं जीत पाते कुश्ती में। प्रकृति ने अन्य कीड़े-मकौड़ों को, जानवरों को कितनी ताकत दी है। बीस साल हो गए भारत सरकार को पल्स पोलियो अभियान चलाते। वे पोलियो का अदृश्य वायरस जिसे आजतक किसी ने देखा नहीं। माइक्रोस्कोप में भी नहीं दिखाई देता वह। बीस साल हो गए अभी तक उसको नहीं मार पाए। पूरा सरकारी विभाग लगा हुआ है। पूरा मेडिकल स्टॉफ, पूरे देश का। सिर्फ एक ही काम में लगा दिया जाता है कि सब काम छोड़ो। सिर्फ पोलियो का टीका लोगों तक पहुँचा दो। मगर पोलियो के टीके पहुँचाने पर भी पोलियो का पार नहीं पा रहे। पूरी भारत सरकार और पूरा उनका मेडिकल स्टॉफ हार गया। प्रकृति में आप चारों तरफ देखें मनुष्य सर्वाधिक कमजोर है। न हमारी इन्द्रियाँ मजबूत हैं, न हमारे हाथ-पैर उतने

ताकतवर हैं, न हमारे पास हिंसा करने के लिए नाखून या दाँत हैं उतने मजबूत। अपनी प्राण रक्षा करना भी मुश्किल है।

अगर जंगल में आज हम जीएं, जस्ट कल्पना करें। आज के सभ्य कहने वाले एक आदमी को ले जाकर हम जंगल में छोड़ दें। मैं नहीं समझता कि एक हफ्ते से ज्यादा वह जिन्दा रह पायेगा। न उसे पेड़ पर चढ़ना आता है। शेर उसके पीछे दौड़ेंगे और वह पेड़ पर भी नहीं चढ़ पाएगा, न वह कीड़े-मकौड़ों से अपनी रक्षा कर सकता, न वह साँप से अपनी रक्षा कर सकता। न वह भोजन पानी का इंतजाम कर पाएगा। एक-एक फल को पाना कितना कठिन है। एक-आध बार पेड़ पर चढ़कर आप तोड़ना फल फिर पता चलेगा कि जब तक आप ऊपर पहुँचे, एक तोता आया और वह तोड़ कर ले गया। हमारे पास न उड़ने की क्षमता है, न लड़ने की क्षमता है, न भागने-दौड़ने की क्षमता है। मनुष्य बहुत कमजोर है। मैं इसलिए बता रहा हूँ क्योंकि मनुष्य की यह कमजोरी ही उसकी प्रतिभा के विकास का कारण बनी। शेर के अन्दर बुद्धि विकसित नहीं हो सकती। क्योंकि उसको जरूरत नहीं है। तोते को बुद्धिमान होने की कोई जरूरत नहीं है। उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। उसकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति हुई जा रही है। वह तो कहीं भी जाएगा, किसी भी पेड़ पर बैठेगा, उसको कोई न कोई यूं ही फल मिल जाएगा, उसके लिए पर्याप्त है। आदमी बड़ा कमजोर है, बड़ा असहाय है और इसलिए आदमी का इतना विकास हुआ। हमारी जो बुद्धि है, जो प्रतिभा है, वह कम्पेन्सेट्री है। हम कई मामलों में कमजोर हैं। उसकी क्षतिपूर्ति करने के लिए, उसको कम्पेन्सेट करने के लिए हमारे अन्दर मस्तिष्क विकसित हुआ।

वैज्ञानिकों ने खोजबीन की है। उनको कोई दस लाख साल पुरानी आदमियों की खोपड़ियाँ मिली हैं। उनका मस्तिष्क बहुत छोटा है। खोपड़ी का साइज छोटा है। पिछले दस लाख साल में धीरे-धीरे हमारी खोपड़ी बड़ी होती गई है। हमारे मस्तिष्क का वजन बढ़ता जा रहा है। आने वाली पीढ़ियों में शायद मस्तिष्क और विकसित होगा। आप देख सकते हैं अभी। नई पीढ़ी

के जो बच्चे आ रहे हैं, वे हमेशा ज्यादा प्रतिभाशाली हैं। अब मेरी उम्र 55 साल हो गई। मैं देखता हूँ पाँच साल के बच्चे को। वह रिमॉट कन्ट्रोल से टी० वी० चला लेता है। मुझे नहीं आता है टी० वी० चलाना रिमोट कन्ट्रोल से। अधिकांश छोटे-छोटे बच्चों को मोबाइल फोन ऑपरेट करना आता है और मैं बड़े-बड़े लोगों को देखता हूँ। उनको सिर्फ दो बटनों पता है। हरी बटन और लाल बटन। वे फोन कर सकते हैं और सुन सकते हैं। पचासों फंक्शन्स हैं उस फोन में, हमें कुछ भी नहीं पता। हमारी उतनी सीखने की क्षमता नहीं है। लेकिन अभी जो बच्चे आ रहे हैं, उनमें हमसे ज्यादा कुशलता है। उनके मोबाइल हाथ में पकड़ते ही सारे फंक्शन उसमें ढूँढ लेंगे कि कैसे उसका कैमरा काम करेगा, कैसे उसके मैसेजिस काम करेंगे। कहाँ क्या होना है। कैसे शिफ्ट करना है। आश्चर्य होता है देख कर। निश्चित रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी हम विकसित हो रहे हैं। इस पूरी विकास की प्रक्रिया को अगर हम देखें तो हम पाते हैं कि हमारे जो दुःख के कारण थे। जो हमारी कमजोरियाँ थीं, जो हमारे वीक प्वाइंटस थे, वही हमारे विकास के कारण बने हैं। पक्षियों को मोबाइल की जरूरत नहीं है। पक्षियों के पास यूँ ही मैसेज आ रहा है। आपने सुना होगा, पढ़ा होगा माइग्रेटिंग बर्डस् के बारे में। हर साल हजारों किलोमीटर की यात्रा करते हैं। कैसे उनको दिशा का ज्ञान होता है। आश्चर्य है! बिल्कुल ठीक समय का उनको पता होता है कलैण्डर का। किस तारीख को उनको वहाँ से उड़ जाना है। करोड़ों-करोड़ों पक्षी उड़ जाते हैं बर्फ गिरने के ठीक पहले।

हमारा मौसम विभाग जो जानकारी देता है। इतने यंत्र बनाने के बावजूद, वे भी अधिकांश काम नहीं आती। जिस दिन मौसम विभाग कहे पानी गिरेगा। तो पक्का मान लो कि उस दिन नहीं गिरेगा। यह पक्षियों को कैसे पता चल गया कि कब ठंड पड़ेगी, कब बर्फ गिरेगी। चल दिए वे हजारों किलोमीटर दूर। उन्हें कैसे दिशा ज्ञान हो गया। हमारे पास तो ऐसी कोई इन्द्री नहीं है दिशा ज्ञान की। अभी मैं हनुमानगढ़ पहली बार आया हूँ। आप मुझे बीच में कहीं ले जाकर छोड़ दें और कहें कि वापस इस जगह आओ। मैं तो

नहीं आ पाऊँगा वापस। आप एक बिल्ली को छोड़ आइये, आँख पर पट्टी बाँध कर। आप घर पहुँचो उसके पहले वह घर पहुँच जाएगी। उसको ज्यादा ज्ञान है। हमको अगर दिशा सूचक यंत्र बनाने पड़े, कि मैगनेटिक कम्पास खोजने पड़े, ये हमारी कमजोरी की वजह से। दूसरे पक्षी को ऑलरेडी ज्ञान है। उनको कोई मैग्नेटिक निडल बनाने की जरूरत नहीं है। यह आदमी की जरूरत है कि हमको रडार खोजना पड़ा। हवाई जहाज किस दिशा में उड़ाएँ। हमको रडार बनाना पड़ेगा। पक्षियों को जरूरत नहीं है। उनके इनबिल्ट रडार सिस्टम है। उनको ठीक कलैण्डर का पता है। उनको घड़ी बनाने की जरूरत नहीं है। आदमी को जरूरत है कितने बजे। पक्षी ठीक समय पर सुबह उठ जाते हैं और ठीक समय पर सो जाते हैं। आदमी के दिमाग में कोई घड़ी नहीं है। उसको पता ही नहीं चलता। कई बार आपको हुआ होगा, दोपहर को आप खाना खाकर सो गए। जब खुली आँख तब शाम हो चुकी थी। एकदम से समझ नहीं आता कि सुबह है कि शाम है? सूर्योदय और सूर्यास्त एक से ही नजर आते हैं। कई बार यह भ्रम उत्पन्न हुआ होगा। आप समझे होंगे कि सुबह हो गई, फिर बाद में पता चला होगा कि यह तो आफ्टरनून है। यह तो शाम है। हमारे पास कोई आंतरिक घड़ी नहीं है। हमारे पास कोई आंतरिक कलैण्डर नहीं है। तो हमने कलैण्डर का जो कैलकुलेशन किया है। वह हमारी कमजोरी की वजह से। हमारी सारी बुद्धि का विकास इन कठिनाइयों की वजह से, दुःखों की वजह से, परेशानियों की वजह से है। हमारे पास अच्छे नाखून नहीं थे जानवरों से लड़ने के लिए। इसलिए हमको हथियार रखने पड़े, धनुष-बाण बनाना पड़ा कि इससे पहले कि वे जानवर हम पर आक्रमण करें, हम तीर चला दें। एक बार वह पास आ गया फिर तो हमारे बचने की कोई उम्मीद नहीं।

मैंने सुना है मुल्ला नसरूद्दीन से किसी ने पूछा कि मान लीजिए कि आप जंगल में जा रहे हो, और कोई शेर सामने आ जाए तो फिर आप क्या करेंगे? नसरूद्दीन ने कहा फिर हम क्या करेंगे, फिर जो करना है शेर ही करेगा? हमारे करने को क्या बचा? मनुष्य ने हथियार दूर से वार करने के

लिए बनाए। शुरू में पत्थर के हथियार बनाए। फिर तीर–धनुष बनाए, गुलैर बनाई। फिर विकसित होते–होते बंदूक बनी, तोंपे बनीं, मिसाईल बनी। सारा का सारा विकास सिर्फ इसलिए कि हमारे पास नाखून और दाँत कमजोर हैं। हम एक कुत्ते से भी नहीं लड़ सकते। कुत्ता हमें काटेगा, हमको रेबीज हो जाएगी। हम कुत्ते को काटेंगे कुत्ते को कुछ नहीं होगा।

तो मनुष्य का सारा विकास इन दु:खों की वजह से, इन कमजोरियों की वजह से है और इसलिए मैं नहीं कहता कि परमात्मा करुणावान नहीं है। मैं कहता हूँ कि परमात्मा की बड़ी कृपा है मनुष्य जाति के ऊपर। क्योंकि इसी से हमारे विकास का द्वार खुलता है। कोई शेर बुद्ध जैसी शान्ति को नहीं पा सकता, कोई हाथी महावीर जैसा प्रसन्न और आनन्द को उपलब्ध नहीं हो सकता, कोई पक्षी कृष्ण जैसी सच्चिदानंद अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता। हमारा विकास इन दु:खों के कारण है और इसलिए इसको परमात्मा की कठोरता मत समझना। ये मनुष्य जाति पर परमात्मा की स्पेशल दया है। अब तुम अपने दु:खों के लिए भी अस्तित्व को धन्यवाद दे पाओगे और उससे बाहर निकलने की राह खोजने की प्रक्रिया में अपनी बुद्धि और विवेक को विकसित कर पाओगे।

धर्म और मनोकामनाएं

हम जीवन में वैसे ही इतने व्यस्त हैं; दृश्य जगत की खोज क्या अदृश्य परमात्मा की खोज से ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं? प्रभु की खोज की आवश्यकता ही क्या है?

यह सवाल ऐसे है जैसे कोई पूछे कि वृक्ष में जड़ें तो दिखाई नहीं देतीं फिर उनका इतना महत्व क्यों माना जाता है? जड़ ही आधार है, प्राण है वृक्ष का। पत्ते हों, न हों कुछ फर्क नहीं पड़ता। अभी थोड़े दिन पहले पतझड़ की ऋतु थी। सारे वृक्ष नग्न खड़े, सब पत्ते झड़ गए, कोई फूल नहीं बचे थे लेकिन जड़ें सुरक्षित थीं, इसलिए फिर अभी बसंत आ गया। कोपलें खिल गईं। फूल मुस्कुराने लगे, पुनः सुवास उड़ने लगी। यदि जड़ें नष्ट हो जाएं तब वृक्ष के दोबारा पनपने की सम्भावना नहीं बचती। वृक्ष का जो हिस्सा दृश्य है, वह

ऊपरी–ऊपरी, सतह पर है। वह कम महत्व का है प्रकृति की नजर में, जड़ें ज्यादा महत्वपूर्ण हैं और इसलिए जड़ों को छिपाया गया है। निसर्ग ने व्यवस्था की है; जो महत्वपूर्ण है उसे बचाया जाए, उसे सुरक्षित व अदृश्य रखा जाए। शाखाओं को तो बन्दर तोड़ सकते हैं, फलों को पक्षी खा जाएंगे, पत्तियों को भेड़–बकरियाँ चर जाएंगी। जड़ें महत्वपूर्ण हैं। उनको प्रकृति ने अंधकार में छिपा दिया है।

मत पूछो कि प्रभु की खोज की आवश्यकता और महत्त्व क्या है? वह जो कि दिखाई भी नहीं देता, वही ज्यादा महत्वपूर्ण है। हमेशा स्मरण रखना अदृश्य ज्यादा महत्वपूर्ण है दृश्य की तुलना में। जब परमाणु की खोज हुई, तब हमने तत्त्व के अदृश्य हिस्से को खोजा और अद्‌भुत घटना घटी। उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु में विराट शक्ति छिपी हुई मिली। बड़े–बड़े हथियार पहले जो बने थे, परमाणु बम बनने के पश्चात् वे सब फीके और बचकाने, बच्चों के खिलौने हो गए। एक अदृश्य परमाणु में इतनी शक्ति मौजूद है! हाथी का शरीर इतना बड़ा है पर याद रखना कोई बैक्टीरिया या माइक्रोस्कोपिक वाइरस के रोगाणु उसके शरीर में प्रवेश करके उसे नष्ट कर देते हैं। इतना विशालकाय हाथी हार जाएगा और वह अदृश्य वाइरस जीत जाएगा।

मेडिकल साइंस ने इतनी प्रगति कर ली। अभी तक वाइरस को मारने वाली दवाइयाँ नहीं बन पाईं। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीव है। उससे छोटा और कुछ भी अभी तक नहीं खोज पाए। जो सूक्ष्म है, जो अदृश्य है; वह ज्यादा महत्वपूर्ण है। और परमात्मा सर्वाधिक सूक्ष्म है, अगम और अगोचर, अदृश्य है और इसलिए वह महत्वपूर्ण है। वही दृश्य जगत का आधार है। उपनिषद के ऋषि दो शब्दों का प्रयोग करते हैं। संभूत ब्रह्म और असंभूत ब्रह्म; अर्थात् प्रकट ब्रह्म और अप्रकट ब्रह्म। जो प्रकट है, वह अप्रकट के ऊपर आधारित है। देखें, इस ओशो–मंदिर में हम बैठे हुए हैं, ओशो–मंदिर के

स्तम्भ दिखाई देते हैं, दीवालें दिखती हैं, खिड़की-दरवाजे दिखाई देते हैं। खूबसूरत छत दिखाई देती है, परदे दिखाई पड़ते हैं। लेकिन जिस बुनियाद पर यह मंदिर खड़ा है, वह बुनियाद नहीं दिखाई पड़ती और आप भली-भांति जानते हैं—खम्बों, दीवारों और छतों से ज्यादा महत्वपूर्ण वह नींव है, जो दिखाई नहीं पड़ती। उस पर ही यह भवन खड़ा हुआ है। इसलिए परमात्मा की खोज ज्यादा महत्वपूर्ण है दृश्य की बजाय। अध्यात्म अधिक महत्वपूर्ण है विज्ञान की तुलना में। दृश्य का महत्व नम्बर दो पर आता है। और केवल परमात्मा ही नहीं, जीवन में जो भी अदृश्य है वह महत्वपूर्ण है। प्रेम दिखाई नहीं पड़ता। बुद्धि दिखाई नहीं पड़ती, प्रतिभा दिखाई नहीं पड़ती, विचार दिखाई नहीं पड़ते, करुणा दिखाई नहीं पड़ती। जो दिखाई पड़ता है वह है कृत्य। लेकिन याद रखना, कृत्य तो झूठा भी हो सकता है। नाटक का अभिनेता भी प्रेम, क्रोध, करुणा, दुःख आदि भावों को अपने शरीर और चेहरे से व्यक्त कर देता है। जबकि वे भाव वास्तव में उसके भीतर नहीं होते। कर्म से तो हम धोखा खा सकते हैं। भाव अदृश्य है, और वही सत्य है। विचार अदृश्य हैं, लेकिन उन्हीं विचारों से सारा जीवन चल रहा है। हमारी प्राण ऊर्जा, भाव एवं विचार से भी ज्यादा सूक्ष्म है। संभवतः विज्ञान और ज्यादा उन्नति करके भाव और विचार पकड़ने की मशीन तो किसी दिन बना लेगा; लेकिन वह जो हमारी जीवन ऊर्जा है, हमारी चेतना है, हमारी कॉन्शियसनैस, उसे मापने का कोई उपाय संभव नहीं है। चेतना के आधार पर ही यह जड़ दिखाई पड़ने वाला जगत चल रहा है। इसलिए चेतना की अदृश्य चरमावस्था अर्थात परमात्मा की खोज दृश्य जगत की खोज से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। विज्ञान से ज्यादा महत्वपूर्ण धर्म है।

प्रश्न— मैं मिलेट्री में जिन्दगी भर बहुत व्यस्त रहा हूँ। एक साल बाद रिटायर होने वाला हूँ। सेना की व्यस्त जिन्दगी में कभी ध्यान इत्यादि करने का अवसर नहीं मिला। व्यस्तता की

आदत बन गई है। भविष्य-निधि से एक फैक्ट्री खोलकर समय काटना चाहता हूँ। पुराने जमाने में संत हुए क्योंकि वे फुर्सत में जीया करते थे। आज के आधुनिक व्यस्त मनुष्य को कैसे परमात्मा मिल सकता है?

—अर्जुन सिंह

अर्जुन सिंह, पहले अपनी गलतफहमी मिटा लो कि तुम अति व्यस्त रहे हो, पुराने जमाने में लोग इससे भी ज्यादा व्यस्त थे। आपको प्यास लगती है, आप जाते हैं फ्रिज खोलकर पानी पी लेते हैं। पुराने जमाने में नदी या तालाब की खोज करने में आदिवासी मनुष्य को संभवतः पाँच-दस किलोमीटर पैदल चलना पड़ता था। आपको भूख लगती है किचन में जाकर 'टिन फूड' गर्म करते हैं और 5 मिनिट में भोजन तैयार हो जाता है; या कहीं रेस्टोरैंट या होटल में तुरंत मिल जाता है। जरा ख्याल करें, आदिवासी युग में जब हम जंगलों में रहते थे, एक फल ढूँढने के लिए कितना श्रम करना पड़ता होगा! वह भी कोई जरूरी नहीं कि मिल ही जाएगा, हर मौसम में खाने योग्य फल नहीं प्राप्त होते। आज शिकार करने के लिए एक हिरन के पीछे आपको दौड़ना पड़े तब आपकी अक्ल में आएगा कि पुराना आदमी कितनी फुर्सत में था?

अर्जुन सिंह, महाभारत के सम्राट अर्जुन से और जंगल के राजा बेचारे सिंह से आप कहीं ज्यादा फुर्सत में हैं। पुराना आदमी अति-व्यस्त था। सिर्फ खाने-पीने का इंतजाम करने के लिए, अपने जीवन की सुरक्षा के लिए कितना परिश्रम करना पड़ता था। ज़रा सोचो पंचवटी की गुफा में या किसी पेड़ के नीचे रात को अर्जुन जी अपने चार भाइयों सहित लेटे हैं और बगल में सिंह दहाड़ा। हम भूल गए पुराना आदमी कितना व्यस्त था। अपनी जिन्दगी को बचाना भी कितना कठिन था। भाँति-भाँति की बीमारियाँ थीं। छोटी उम्र थी। अभी ज्यादा पुरानी बात नहीं, जब मैं मैडिकल कालेज में विद्यार्थी था, तब भारतवर्ष की औसत आयु सत्ताईस साल थी। आज से हजारों साल पहले

औसत आयु कितनी रही होगी? पन्द्रह-सोलह साल से ज्यादा नहीं रही होगी। एक अनुमान इससे लगा लें कि लाखों साल से मनुष्यों की जनसंख्या वही की वही रही, जबकि हर दम्पति के कम से कम दस-पन्द्रह बच्चे हुआ करते थे। एक स्त्री के प्रजनन काल का समय तीस वर्ष है; पन्द्रह साल की उम्र से लेकर पैंतालीस साल तक, यदि प्रत्येक दो वर्ष में एक बच्चा जन्मे तो औसत पन्द्रह बच्चे हर स्त्री पैदा करेगी। पन्द्रह में से अगर केवल दो जीवित बचें तब जाकर पापुलेशन मैन्टेन, यथावत रहेगी; माता-पिता के दो बच्चे बचने चाहिए। पन्द्रह में से तेरह युवा होने से पहले मर जाएँगे। तो हिसाब लगा लो, औसत आयु कितनी रही होगी? मैं नहीं समझता कि दस साल भी रही होगी। कितनी व्यस्तता थी, कितने बच्चों का पालन-पोषण, यद्यपि पन्द्रह में से तेरह मर जाएँगे। दो ही युवावस्था को पार कर पाएँगे। कितनी व्यस्त जिंदगी रही होगी। खाना-पीना, बच्चे पालना, सुरक्षा का इंतजाम करना, बीमारियों और जानवरों से बचना। जीवन अति-कठिन था।

आप कह रहे हैं कि सेना में व्यस्त जिंदगी जीया, अब रिटायर होने वाला हूँ। आप गलतफहमी में हैं। आपने अपनी पूरी जिन्दगी में कितने युद्ध लड़े? मुश्किल से दो-एक या शायद एक भी नहीं, बस परेड ही करते रहे—रिहर्सल मात्र! उसमें से भी बचकर आ गए, तभी तो रिटायर होने का समय आया। पुराने सैनिकों को कभी रिटायरमैन्ट का अवसर नहीं मिलता था। सभी शहीद हो जाते थे। कभी-कभार मुल्ला जैसे अनूठे लोग सकुशल घर लौटते थे।

मुल्ला नसरूद्दीन के गांव में एक सैनिक आया हुआ है। वह बहुत अपनी बहादुरी की बातें कर रहा है, काफी हाउस में बैठकर। वह कह रहा है कि मैंने इतने सिर काट दिये, इतने सिर काट दिये। मुल्ला बहुत देर सुनता रहा। उसने कहा कि दिस इज नथिंग। यह कुछ भी नहीं है। एक दफा मैं भी गया था युद्ध में, मैंने न मालूम कितने लोगों के पैर काट दिये।

उस योद्धा ने कहा कि महाशय, अच्छा हुआ होता कि आप सिर काटते।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि सिर कोई पहले ही काट चुका था। न मालूम कितनों के पैर काटकर हम घर आ गये, कोई ज़रा-सी खरोंच भी नहीं लगी। तुम तो काफी पिटे-कुटे मालूम होते हो।

गुजरे जमाने की याद करो। भारत जब आजाद हुआ भारत में दो हजार राज्य थे। आज जितना बड़ा एक जिला है, इतने बड़े राज्य हुआ करते थे। यह कोई बहुत दूर की नहीं, उन्नीस सौ सैंतालीस की बात बता रहा हूँ। प्राचीनकाल में तो और छोटे-छोटे, एक-एक कस्बे या तहसील के बराबर देश हुआ करते थे। एक राजा की हैसियत एक कलैक्टर या तहसीलदार से ज्यादा नहीं थी और निरन्तर अड़ौसी-पड़ौसी से झगड़ा चलता रहता था। पुराने इतिहास उठाकर देखो। सिवाय लड़ाई-झगड़े के और कुछ भी नहीं लिखा है पूरे पृष्ठों पर। लगातार युद्ध चलते थे। अगर आप उस जमाने में मिलेट्री में होते तो रिटायरमैन्ट का और इस तरह के प्रश्न पूछने का मौका ही नहीं आता।

आज के काल में सुख सुविधा के साधन सर्वाधिक उपलब्ध हैं।

आप कह रहे हैं कि पुराने जमाने में लोग व्यस्त नहीं थे इसलिए धर्म की खोज में लग पाए। मैं आपसे कहना चाहता हूँ आज हम जितनी बड़ी सुख-सुविधा में जी रहे हैं; जितनी लम्बी आयु और वक्त हमारे पास है; इतना पहले कभी किसी के पास नहीं था। इसलिए बहाने मत खोजो। विज्ञान की कृपा से आज हम बहुत बेहतर हालत में हैं। तुम कह रहे हो कि पुराने जमाने में इतने संत हुए क्योंकि उनके पास काफी समय था। क्या तुम सोचते हो कबीर साहब दिन भर व्यस्त नहीं रहते थे कपड़ा बुनने में। वर्ना ये गीत क्यों गाते-

'झीनी झीनी बीनी चदरिया।'

रोज बाजार जाते थे अपना सामान बेचने। कैसे कह सकते हो कि व्यस्त नहीं थे? कोई मशीन नहीं थी। तकली से सूत कात रहे थे। आज फैक्ट्रियों में

कपड़ा बन रहा है। एक आदमी जितना कपड़ा बना सकता है, उससे लाखों गुना ज्यादा कपड़ा एक फैक्ट्री बना देती है, जहाँ पच्चीस-पचास आदमी काम करते हैं बस।

तुम क्या सोचते हो रैदास चमार फुर्सत में बैठे रहते थे? बेचारे मुर्दा पशु ढोते होंगे, जूते सीते होंगे सुबह से शाम तक। गोरा कुम्हार 'ओवरटाइम' में घड़े निर्मित करते होंगे, तब जाकर बामुश्किल पेट भरने लायक आजीविका कमा पाते होंगे। बहाने न खोजो कि पुराने लोग फुर्सत में थे इसलिए परमात्मा को उन्होंने जान लिया और हमको समय नहीं है। बहुत समय है। इतना समय है जितना समय पहले कभी किसी के पास नहीं था। न तो इतनी लम्बी उम्र थी पहले कभी, न इतनी फुर्सत थी, न इतनी सुविधाएँ थीं। रिटायर हो रहे हो, अब समझदारीपूर्वक इस सौभाग्य का सदुपयोग कर लो।

हमारे पास जो है, उस पर हमारी नजर नहीं होती। जो हमारे पास नहीं है, उस पर हमारी दृष्टि गढ़ी होती है। आपके पास दस लाख रुपये हैं, आपको दस लाख कभी दिखाई नहीं पड़ते। आपको बीस लाख की आकांक्षा है। जहाँ कमी है, आपकी नजर वहाँ पड़ती है। जिस मकान में आप रहते हो और जो कार आपके पास है, वह मकान-कार आदि तो आपके लिए बिल्कुल अदृश्य हो गए हैं। शहर के दूसरे बड़े मकान दिखाई पड़ते हैं। और मंहगी वाली कार जब सड़क से गुजरती है तब आपकी नजर पड़ती है। तब आपको याद आता है कि अरे! मेरे पास कीमती गाड़ी नहीं है! इसलिए दूसरों की नजर में आप सफल दिखेंगे, खुद की दृष्टि में नहीं। जिस आदमी के पास सिर्फ एक लाख रुपये है, उसकी दृष्टि में आप 'दस लाख रुपयों के मालिक' बहुत सफल व्यक्ति हैं। वह उन चीजों को पाने की चाहत से भरा है, जो आपके पास हैं। लेकिन आपकी हालत भी वही है। जिसके पास एक करोड़ है, आपकी आंखें उसकी चीजों पर अटकी हैं। काश, आपके पास वह सामान और सुख-सुविधाएँ होतीं! कोई भी व्यक्ति अपनी नजरों में सफल नहीं है। सबकी सफलता का पैमाना ईर्ष्या पर आधारित है। जिसके

पास करोड़ हैं वह भी सफल नहीं है। उसके सामने दस करोड़ वाला खड़ा है। अरबपति खड़े हैं, उनके आगे खरबपति खड़े हैं। और मजेदार बात है कि दुनिया वर्तुलाकार है। गोल-गोल खेल चल रहा है। यहाँ एक आयाम में सफल हो भी जाओ तो अन्य सैंकड़ों आयामों में पिछड़ जाते हो।

मैंने सुना है – अशिक्षित लोग सोचते हैं कि काश शिक्षा मिल गई होती। ऊँची डिग्रियाँ हासिल करते तो कितना आनन्द होता? उच्च डिग्रीधारी सोचते हैं कि काश नौकरी मिल जाती, फिर मजा ही मजा होता, कब से बेरोजगार भटक रहे हैं। जिनको नौकरी मिल गई है, वे सोच रहे हैं, जब प्रमोशन मिल जाए, तब मौज करेंगे। अभी कहाँ सुख? जिनके प्रमोशन हो गए हैं, वे सोच रहे हैं कि कहाँ नौकरी में फंस गए; अगर अपना व्यापार करते तो कहाँ से कहाँ पहुँच गए होते। हमारे संगी-साथी बड़े-बड़े व्यापारी बन गए। हम पढ़-लिख कर नौकरी कर रहे हैं, लिमिटेड आमदनी है, फिक्स्ड सैलरी। काश बिजनिसमैन होते तो आनन्द आता। व्यापारी सोच रहा है धन का ढेर लगाकर, काश, मैं सुन्दर होता! धन तो है खूब। मगर शक्ल-सूरत बाजार में नहीं बिकती। सौंदर्य खरीदा नहीं जा सकता। सुन्दर आदमी सोच रहा है कि काश मैं पहलवान होता तो कैसा अद्‌भुत सुख बरसता। है तो सुन्दर बेचारा किंतु सदा बीमार रहता है, कमजोर रहता है। क्या करोगे सुन्दरता का? असली बात सेहत है—जो चीज नहीं है उसकी महत्ता दिखाई पड़ेगी। सड़क पर से गुजरता हुआ वह देखता है एक पहलवान को, ईर्ष्या से भर जाता है कि ये देखो; न सही सुन्दर, न सही धनी, न सही ज्ञानी, कम से कम स्वस्थ तो है। पहलवान ईर्ष्या से भर जाता है जब किसी बुद्धिमान को देखता है। पहलवान और बुद्धिमान एक साथ होना ज़रा मुश्किल मामला है। जो शरीर को मजबूत कर लेते हैं वे अक्सर बुद्धि से दुर्बल रह जाते हैं। जो बुद्धि को मजबूत करने में लगे रहे, उनका शरीर कमजोर रह जाता है। प्रायः दोनों चीजें एक साथ नहीं सध सकतीं। स्कूल कालेज के दिन याद करो। जो अच्छे

खिलाड़ी थे, 'हीरो' थे; वे पढ़ाई में 'जीरो' थे। जो पढ़ाई में होशियार थे, वे खेलकूद में जीरो थे। दोनों काम एक साथ नामुमकिन हैं। कुआँरा आदमी सोचता है कि काश शादीशुदा होते तो आनन्द करते! और शादीशुदा सोचता है कि काश मर ही गए होते! अब कुछ और विकल्प सूझता नहीं, मर ही गए होते तो शायद भूत-प्रेत बनकर आनन्द करते। कम से कम चुड़ैल से तो छुटकारा मिलता। 'विवाह' तो बस एक 'विवश-आह' है।

हम जिसे सफल व्यक्ति कह रहे हैं, खुद उससे तो पूछो। सिकन्दर और हिटलर की कहानी सुनी होगी, क्या वे खुद की नजरों में सफल थे? वर्ना सिकन्दर अर्थी के बाहर खाली हाथ क्यों लटकवाता और अगर हिटलर को सुख-शान्ति मिल गई थी तो क्या आत्महत्या के पांच मिनट पहले शादी करता? बेचारे को जिंदगी भर कोई सुख न मिल पाया, साधारण सुख भी नहीं। सामान्य आदमी को भी जो मिल जाते हैं, वे भी प्राप्त न हो पाए। शत्रुओं के भय से हिटलर रात में चार बार मकान बदलता था तो कितनी देर सो पाता होगा? आठ घन्टे की नींद में चार बार घर-परिवर्तन... क्या खाक नींद आएगी? और जितनी देर एक घर में होंगे वहाँ भी डर रहे होंगे, घबरा रहे होंगे। हाथ-पैर कंप रहे होंगे कि अब आया दुश्मन, अब आया! तुम जितने शक्तिशाली हो जाओगे, जितना धन का अंबार लगा लोगे, जितनी अधिक शक्ति-सम्पत्ति के मालिक बनोगे, उतना ही ज्यादा भयभीत होना पड़ेगा।

साल-भर पहले एक सज्जन से मुलाकात हुई, उनको रात नींद नहीं आती थी। नींद की दवाइयाँ भी असर नहीं करतीं। मैंने पूछा कि परेशानी क्या है? कहने लगे कि बस ज़रा सा खटका होता है और लगता है कि इन्कम टैक्स ऑफिसर आ गए। काला धन जगह-जगह छुपाया हुआ है। चैन से सो नहीं पाते। इनका धन इनके लिए सुविधा और शांति नहीं लाया और मुसीबत ले आया। वे अनिद्रा से पीड़ित हैं, सो ही नहीं सकते। कोई नींद की दवाई

काम नहीं करती। पत्ता भी हिलता है तो लगता है कि आ गया इन्कम टैक्स ऑफिसर, अब छापा पड़ा।

जिन्हें तुम सफल लोग कहते हो, वे तुम्हारी नजर में सफल हैं। जैसे तुम स्वयं अपनी नजर में असफल हो, वैसी ही दुर्गति उनकी भी है। कई लोगों की नजर में तुम सफल होओगे, तुम्हें पता भी नहीं है कि कितने नालायक तुम्हें देखकर ईर्ष्या से जले-भुने जा रहे हैं बेचारे। जैसे तुम दग्ध हुए जा रहे हो किसी और को देखकर। बड़े से बड़ा अमीर आदमी अपनी एयरकन्डीशंड कार से गुजरता है और दोपहर की धूप में वृक्ष के नीचे एक मजदूर को खर्राटे भरते, सोता हुआ देखता है तो ईर्ष्या से जल-भुन जाता है कि मैं अपने वातानुकूलित मकान में, मखमली गद्दों पर भी चैन से नहीं सो पाता। मजदूर को लगेगा कि अमीर आदमी सफल है। अमीर को लगेगा कि मुझसे तो भले ये मजूदर। कम से कम चैन से सो तो लेते हैं। जिनके पास खाने को रोटी नहीं है, उनको भूख बहुत अच्छी लगती है। जिनके पास खाने को बहुत ज्यादा है, उनको डॉक्टरों ने मना कर दिया है कि खाना मत, अन्यथा मर जाओगे। पूरब में लोग भूख से मर रहे हैं। पश्चिम में लोग खा-खाकर मर रहे हैं। कुल मिलाकर परिणाम एक ही है। किस भाँति मरना है, इसमें चुनाव है, बस!

कई बार मैं मजाक करता हूँ आनन्द प्रज्ञा में लोग आते हैं सफलता की बातें करते हैं। मैं उनसे कहता हूँ कि अच्छा ज़रा कल्पना करो तुम एक सामान्य, साधारण आदमी रहे। कोई तुम्हें जानता नहीं, कोई पूछता नहीं। कोई पद, कोई नाम, प्रतिष्ठा नहीं। कई कब्रस्तान में छोटी सी मिट्टी की कब्र बन जाएगी। कोई संगमरमर का पत्थर उस पर लगा नहीं होगा। हो सकता है नाम भी ना हो। एक अनजान आदमी की कब्र और अगर तुम बहुत महान सिकन्दर या हिटलर बन गए, तो सम्भव है कहीं सड़क के चौराहे पर तुम्हारी मूर्ति लगी होगी संगमरमर की और सड़क का नाम तुम्हारे नाम के ऊपर रख दिया जाए। ये दो ही चीजें हो सकती हैं। बहुत ज्यादा सफल हुए तो तुम्हारी

मूर्तियाँ लग जाएंगी। अंतिम परिणाम जो होगा इस संगमरमर की मूर्ति पर। कबूतर, कौए, चिड़िया मजे से बीट करेंगे। वे सोचते हैं शायद उन्हीं के लिए लगाई गई है मूर्ति। और अगर अनजान आदमी की कब्र कहीं बनी है तो कुत्ता उसके ऊपर करेगा शूशू। तो चुनाव कुछ खास नहीं है, कुत्तों और कबूतरों के बीच में करवाना है। किससे आप करवाना चाहते हो। इसके लिए इतनी भागदौड़ और उपद्रव मचाओ। कुछ औचित्य नजर नहीं आता। इतना ही शौक है तो कबूतर कौओं को ऐसे ही पाल लो। बिठा लो अपने कंधे पे। जीते जी ही करवा लो जो तुम मूर्ति पर करवाने वाले हो। ज़रा लौट कर देखो पीछे अरबों-खरबों लोग हो चुके हम से पीछे। उनमें कितने सफल लोग हुए, कितने असफल लोग हुए। आज कुछ फर्क पड़ता है। अगर वे वैसे न हुए होते तो।

मुझे तो याद आता है जब स्कूल में इतिहास की किताबें पढ़ते थे और उसमें आता था कि बाबर का जन्म फलाँ-फलाँ तारीख को हुआ और अकबर ने इतने समय तक राज्य किया। इस साल में कुर्सी पे बैठे। फलानी लड़ाई इस काल में हुई। पानीपत की तीसरी लड़ाई इस सन् में हुई। ये महापुरुषों के नाम पढ़-पढ़ कर पेपर के लिए तैयारी करते हुए सभी विद्यार्थी गालियाँ दिया करते थे कि हराम जादे मर गए और हमारे लिए ये इतिहास की किताबें छोड़ गए। अब याद करो कि हुमायूं के बाप का नाम क्या था? अरे असली बाप का नाम तो सिर्फ माँ को पता होता है। ये सज्जन किस सन् में पैदा हुए, किस सन् में मर गए। इससे लेना-देना क्या है? कभी भी पैदा हुए। मर गए सो मर गए। क्या फर्क पड़ता है कब मरे। हाँ, अगर तुम्हें गालियाँ खानी हैं भविष्य के विद्यार्थियों से, तो अपना नाम इतिहास के पन्नों में छोड़ जाना। खूब गालियाँ पड़ेंगी। तुम किसे सफल आदमी कह रहे हो। नहीं, पहली बात आस्तिकता और नास्तिकता का सफलता से कोई लेना-देना नहीं है और दूसरा तुम जिसे सफल कह रहे हो, वह स्वयं अपनी

नजरों में सफल नहीं है। क्योंकि जिन्दगी बहुआयामी है। मल्टीडाइमैंशनल। तुम ज्यादा से ज्यादा किसी एक दिशा में, दो दिशा में आगे बढ़ सकते हो। बाकी के सैकड़ों आयामों में पिछड़ जाओगे। हो सकता है तुम बहुत धनवान बन जाओ, कवि नहीं बन पाओगे, तुम कभी चित्रकार न बन पाओगे, नर्तक न बन पाओगे। वे चीजें पीछे छूट जाएंगी। हो सकता है तुम बड़े गीतकार बन जाओ। लेकिन जरूरी नहीं कि तुम धन कमा सको।

अभी मैं पढ़ रहा था पत्रिका में एक सज्जन के विषय में। वे बहुत मीठी आवाज के जादूगर हैं, रेडियो पर बरसों तक करोड़ों लोग उनकी आवाज के फैन रहे हैं। किसी सभा में उनको सम्मान करने के लिए बुलाया गया, बड़ा समूह इकट्ठा हुआ, उन्होंने मंच पर आने से इंकार कर दिया। बहुत मिन्नतें की गईं, लेकिन वे मंच पर सबके सम्मुख नहीं आए। सामने की पंक्ति में ही बैठे रहे। उन्होंने वहीं से बैठे-बैठे माइक पर जो कहना था, कहा। लेकिन मंच पर आकर संबोधन नहीं किया। कारण? वे अपने आपको बहुत बदसूरत समझते हैं। इस लायक नहीं मानते कि सबके सामने मंच पर अपनी सूरत दिखाएं। रेडियो के जमाने में सुप्रसिद्ध हो गए। टी० वी० के जमाने में फेमस नहीं हो सकते थे। इतनी मधुर आवाज है जैसे- मिसरी घुली हो। परंतु शक्ल ठीक नहीं है। क्या करोगे? भीतर हीन-भावना का कीड़ा खाए जायेगा।

जो चीज नहीं है, उसी पर हमारी नजर जाती है। बत्तीस दाँत हैं मुँह में। चौंसठ साल तक रहे होंगे। तुम कभी ख्याल न करोगे। जब एक दाँत कभी टूट जाएगा पैंसठ साल की उम्र में, तब जीभ बार-बार वहीं जाएगी कि हाय, दाँत कहाँ गया? चौंसठ साल तक कभी फिकर नहीं की, कि दाँत हैं भी। अभाव पर नजर जाती है। जो है, उस पर नजर नहीं जाती। चूँकि परमात्मा है, सदा-सदा से है, सदा-सदा होगा; इसलिए हम उससे चूक जाते हैं। परमात्मा से चूकने का और कोई कारण नहीं है। तुम यह बहाना न बनाओ कि व्यस्त जीवन में परमात्मा को नहीं खोज पा रहे हो। असली कारण व्यस्तता की वजह नहीं है। परमात्मा को इसलिए नहीं खोज पा रहे हैं, क्योंकि हमने

उसको कभी खोया नहीं और खो भी नहीं सकते; अत: उसको खोजने की प्यास नहीं जगती। जो नहीं है, हमेशा उस पर हमारी नजर अटकी रहती है।

परमगुरु ओशो ने बड़ी अद्‌भुत परिभाषा की है आस्तिकता और नास्तिकता की। अगर तुम समझो तो वह उपयोगी होगी। आस्तिक का अर्थ है होने पर जिसकी नजर है, 'भाव' पर, जो है, दैट विच इज। और नास्तिक का अर्थ है ना-अस्ति, जो 'नहीं' है। जिसकी कोई हस्ती नहीं है, उस पर जिसकी नजर है। जो मेरे पास है, अगर वह मेरी नजर में है तो मैं आस्तिक हूँ। और जो मेरे पास नहीं है, उस पर मेरी दृष्टि अटकी है तो मैं नास्तिक हूँ। ओशो की इस प्यारी परिभाषा को दृष्टि में रखोगे तो आस्तिक का अर्थ ईश्वर को मानने वाला नहीं है, बल्कि ऐसा व्यक्ति जिसकी नजर होने पर है। दैट विच एग्जिस्ट्स। जिसका अस्तित्व है, उसे जो देखता है। निश्चित रूप से एक दिन वह अपने भीतर परमात्मा तक पहुँच जाता है। क्योंकि परमात्मा है। संसार नहीं है, बस दिखाई भर पड़ता है, है नहीं। इसलिए शंकराचार्य उसे माया कहते हैं और इसलिए संसार में कोई सफल हो ही नहीं सकता। वह ऐसा है कि इंद्रधनुष पकड़ने को कोई दौड़े। तुम्हें लग रहा है कि शायद कोई तुमसे बहुत आगे निकल गया। उसने पकड़ लिया होगा इंद्रधनुष। लेकिन इंद्रधनुष उससे भी उतना ही दूर है, जितना तुमसे। जैसे कोई क्षितिज पकड़ने को भागे और भारी व्यस्त हो और उससे हम कहें कि स्वयं को खोजो, तो तुम्हारी तरह वह कहेगा अभी कहाँ फुर्सत? पहले क्षितिज तो पकड़ लें। वह देखो सामने तीन-चार किलोमीटर दूरी पर लोग नजर आ रहे हैं, वे लोग क्षितिज के पास पहुँच गए बिल्कुल। जो चार किलोमीटर आगे हैं, उनको भी वैसा ही लग रहा है कि उनके भी चार किलोमीटर जो आगे हैं, वे सौभाग्यशाली लोग पहुँच गए, जहाँ जमीन और आसमान मिलते हैं। लेकिन वास्तव में जमीन, आसमान कहीं मिलते ही नहीं। इसलिए चाहे कितने भी व्यस्त रहो और चाहे कितनी ही तेजी से दौड़ो, कभी सफल न हो सकोगे।

वास्तव में सफल केवल आस्तिक ही हो सकता है–ओशो की परिभाषा वाला आस्तिक। और नास्तिक हमेशा असफल होगा क्योंकि वह उस चीज को पाने चला जो है ही नहीं। सपनों का सौदागर है, वह अब टूटा कि तब टूटा। वह कागज की नाव चला रहा है, अब डूबी कि तब डूबी।

अर्जुन सिंह, सपनों से जागो। नौकरी से रिटायरमेंट का वक्त आ गया, शीघ्र ही जिंदगी से रिटायरमेंट का वक्त भी आ जाएगा। इसलिए वक्त को और मौत को, दोनों को हिन्दी में काल कहते हैं। बचपन गया, जवानी गई, उनके खेल–खिलौनों को भी जाने दो। तुम कह रहे हो कि भविष्य–निधि से एक फैक्ट्री खोलकर समय काटना चाहते हो। भविष्य होगा, पक्का है? पागल, तुम समय को काटोगे कि समय तुम्हें प्रतिपल काट रहा है? अब जागो।

प्रश्न– क्या सांसारिक कामनाएँ और धार्मिक कामनाएँ एक जैसी नहीं हैं?

नहीं, संसार की कामना उसे पाने की है, जो उपलब्ध नहीं है। और धर्म की अभिप्सा मैं जानबूझ कर अभिप्सा शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ कामना का नहीं ताकि भ्रम उत्पन्न न हो। भीतर की अभिप्सा उसे पाने के लिए है, जो पहले से ही है। जो मौजूद है, जिसकी उपस्थिति है। दोनों में बड़ा फर्क है। संसार की कामना पूर्ति के लिए दौड़ना होगा। स्वयं को खोजने के लिए आत्मा के परम रूप परमात्मा को जानने के लिए ठहरना होगा। एक में बहिर्मुखी होना होगा, एक में अंतर्मुखी बनना होगा। एक में यात्रा करनी होगी। एक में रुकना होगा। अपने भीतर स्थित हो जाओ। बुद्ध से किसी ने पूछा कि बुद्धत्व में आपको क्या मिला? गौतम बुद्ध ने कहा: मिला कुछ भी नहीं, जो पहले से ही मिला हुआ था उसका पता चला। पहले उसके प्रति मैं अनजान था। उस तरफ मेरी नजर नहीं थी। नया कुछ भी नहीं मिला। जो सदा–सदा से उपलब्ध था, उपस्थित था, उस पर मेरी दृष्टि पड़ी। इसलिए

दोनों कामनाओं में जमीन–आसमान का भेद है। दोनों एक दूसरे से बिल्कुल विपरीत हैं। एक बहिर्मुखी एक अंतर्मुखी। एक में दौड़ना होता है, एक में ठहरना होता। एक में जिसे हम पाने चलें, वे हमसे दूर है; दूसरे में जिसे हम पाने चलें वे हमारा स्वयं का होना है।

प्रश्न— सांसारिक कामनाओं की पूर्ति करने में सारी जिन्दगी गुजर जाती है, धार्मिक कामनाओं की दौड़ के लिए समय कहाँ से निकालें?

धार्मिक कामना के लिए दौड़ना नहीं रुकना होता है। गुलाम अली की गज़ल् की एक पंक्ति मुझे बड़ी प्यारी लगती है। आपने सुनी होगी शायद वह गज़ल्।

दरिचां बेसदा कोई नहीं है,
अगरचे बोलता कोई नहीं है।
मैं ऐसे जमघटे में खो गया हूँ,
जहाँ मेरे सिवा कोई नहीं है।
रुकूँ तो मंजिलें ही मंजिलें हैं,
चलूँ तो रास्ता कोई नहीं है।

भीतर की बात है, वहाँ रुकने वाले को मंजिल मिलती है। चलने वाले को नहीं। इसलिए भीतर दौड़ने का तो सवाल ही उत्पन्न नहीं होता। भीतर तो स्थितप्रज्ञ हो जाना होता है। सब भाँति रुक जाना होता है। ओशो ने अपनी एक किताब का शीर्षक रखा है– 'बी स्टील एंड नो।' थमो और जानो। एक अन्य किताब का शीर्षक है– 'डौंट डू समथिंग जस्ट सिट देअर।' ओशो को एक झेन पंक्ति बड़ी पसन्द थी। 'सिटिंग साइलेन्टली डूइंग नथिंग, द स्प्रिंग कम्स एण्ड द ग्रास ग्रोस बाय इटसैल्फ। कुछ न करते हुए बस यूँहि

बैठे-बैठे, आती है ऋतु बसंत की और घास अपने आप उगती है। न कहीं दौड़ने का सवाल है। न कुछ करने का सवाल है। होने का सवाल है। संसार में करना पड़ता है। अध्यात्म में होना होता है। दोनों आयाम भिन्न-भिन्न हैं और आपने पूछा है सांसारिक कामनाओं की पूर्ति करने में जिन्दगी गुजर जाती है। मैं आपसे एक सवाल पूछता हूँ कि क्या कोई कामना कभी पूरी हुई? आप कह रहे हैं कि आप बहुत व्यस्त हैं अलग से और कहाँ धर्म के लिए फुर्सत। मैं आपसे कह रहा हूँ, ज़रा गौर से देखो तो सही। कोई कामना पूरी हुई? इन कामनाओं को मैं थोड़ा विस्तार से विश्लेषण करके कुछ कहना चाहूँगा।

सबसे पहली कामना है हमारी जीवेष्णा। जीने की इच्छा। इसके पीछे दौड़ कर हम दीर्घायु हो सकते हैं। लेकिन यह कामना कभी पूरी नहीं होगी। अंत में हम मर जाएँगे। हाँ, एक नए तरीके से पूरी हो सकती है। काश हम समाधि में डूबकर अपने अमृत चैतन्य को जान लें। वह जो शरीर का द्रष्टा है, साक्षी है उसे पहचान लें। वह कभी नहीं मरता। वह अमृत स्वरूप है, अजन्मा है। ओशो ने अपनी समाधि पर लिखवाया है: न कभी जन्मे, न कभी मृत्यु हुई। नेभर बॉर्न, नेभर डाईड। यह हर व्यक्ति के बारे में सत्य है। लेकिन शरीर तो अमर नहीं हो सकता। लेकिन शरीर का जो साक्षी चैतन्य है। वह अमृत स्वरूप है।

तो जीवेष्णा संसार में पूरी नहीं हो सकती। अध्यात्म में पूरी होती है। वहां पूरी करनी नहीं पड़ती। स्वयं को अमर बनाने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता। बस पता चलता है कि मैं अमर ही हूँ।

दूसरी इच्छा सुख की आकांक्षा है। इंद्रियों के भोग के माध्यम से हम सुख प्राप्त करना चाहते हैं। मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि क्या हर सुख के साथ दु:ख नहीं मिला। जब भी सुख मिलता है उसके पीछे-पीछे दु:ख चला आता है। जैसे दिन के पीछे रात, स्वास्थ्य के पीछे बीमारी, प्रेम के पीछे घृणा,

दोस्ती के पीछे दुश्मनी। जो व्यक्ति सुगन्ध के प्रति जितना संवेदनशील होगा, वह दुर्गन्ध के पीछे भी उतना ही संवेदनशील होगा। अगर सुगन्ध से उसको सुख मिलता है, तो बदबू से उसको उतना ही दुःख मिलेगा। अगर कोई बहुत सौन्दर्य का पारखी है, तब कुरूपता उसे बड़ी खलेगी।

हमारे एक मित्र हैं जिन्होंने गीत गाए हैं एक कैसेट में– 'ओशो मैं हूँ तेरी बाँसुरी।' बड़ी प्यारी आवाज है उनकी। अच्छे संगीतकार हैं। टैलीविजन में काम करते हैं। एक बार मुझे बता रहे थे कि उनको माइग्रेन सिरदर्द होता है बड़ा भयानक। मैंने पूछा कि कोई खास कारण जिससे वह शुरू होता है। वे कहते हैं कि जब भी मैं बेसुरी आवाज सुनता हूँ बस असहनीय दर्द उत्पन्न हो जाता है। अब क्या करोगे? छः अरब आदमी दुनिया में हैं और आदमी ही नहीं हैं, कौवे भी हैं और कुत्ते भी हैं और हार्न भी बजेगा, ट्रेन भी गुजरेगी। चारों तरफ से आवाजें होंगी। संगीतकार के लिए वह असहनीय वेदना उत्पन्न हो जाएगी। बेसुरी आवाज सुनके। क्या करोगे? तुम अपने कान को इतना प्रशिक्षित कर लोगे। संगीत की ध्वनियों के लिए उतनी ही तकलीफ भी भुगतनी पड़ेगी; बेताल और बेसुरी आवाज सुनके। इसलिए सुख के साथ हमेशा दुःख मिलेगा। तो सुख की आकांक्षा तो पूरी होती नहीं इन्द्रियों के भोग के द्वारा। लेकिन पूरी हो सकती है समाधि में अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वारा। इन कानों के अतिरिक्त अतीन्द्रिय श्रवण संभव है। इन आँखों के पीछे अतीन्द्रिय दर्शन संभव है। दिव्य सुगन्ध और दिव्य स्वाद और दिव्य स्पर्श और दिव्य खुमारी के अनुभव। उनमें तृप्ति मिलेगी। शरीर की इन्द्रियों से तो आज तक किसी को तृप्ति नहीं मिली।

तो जीवेष्णा और सुख की आकांक्षा के बाद तीसरी हमारी मुख्य कामना है शक्ति की आकांक्षा। चाहे हम शारीरिक बल और स्वास्थ्य के द्वारा या ऊँचे पद पर पहुँच कर या राजनीति की दौड़ में पड़कर अपने आप को शक्तिशाली सिद्ध करना चाहते हैं। अपनी ताकत बताना चाहते हैं लेकिन

बड़े-बड़े ताकतवर लोग जहाँ सिकन्दर और हिटलर भी हार गए, वहाँ कोई भी कैसे जीत सकता है? उल्टा होता है शक्ति की दौड़ में, अपने भीतर की निर्बलता का अहसास होता है। अब हिटलर जैसा महान शक्तिशाली आदमी शादी करने से डरता है। ज़रा सोचो उसके भय, उसकी कायरता के बारे में। इसने सारी दुनिया को डरा दिया, सारी दुनिया को हिला दिया। इसके खुद के प्राण कितने कंपित हैं। शायद इसलिए दुनिया को कंपाने चला। तो बाहर शक्ति की जो आकांक्षा है। वे पूरी नहीं होती हैं। आज तक किसी की नहीं हुई। लेकिन भीतर पूरी हो सकती हैं। भीतर जिसे हम कहते हैं आदि शक्ति। डिवाइन एनर्जी। वह जो हमारा निराकार सूक्ष्म शरीर है। हमारा आभा मंडल, हमारा ऊर्जा शरीर। आज की भाषा में हम उसे कह सकते हैं इलैक्ट्रिकल बॉडी। वह शक्ति का पुंज है। उस निराकार शक्ति का अहसास जिसने कर लिया ध्यान में डूब कर, उसकी शक्ति की दौड़ समाप्त हो जाती है तो बाहर शारीरिक बल या राजनैतिक बल या पद प्राप्त करके तो कोई तृप्ति नहीं होती। लेकिन भीतर डूब कर उस दिव्य ऊर्जा को जानकर, उस वाइटल फोर्स को जानकर असीम शक्ति का अहसास होता है, तब तृप्ति मिलती है।

तो जीवेष्णा, सुख आकांक्षा, शक्ति की आकांक्षा के बाद चौथी हमारी जो आकांक्षा है प्रेम की। हम चाहते हैं कि कोई हमें प्रेम दे। हम किसी को प्रेम कर सकें। लेकिन इस कोशिश में हम दूसरों के साथ हिंसा शुरू कर देते हैं। हम दूसरों को मजबूर करना चाहते हैं कि हमें प्रेम दो, हमें सम्मान दो और हमें लगता है कि दूसरा व्यक्ति पूरी तरह समर्पित नहीं हो रहा है। क्योंकि दूसरापन नहीं मिट रहा। मैं, मैं हूँ। वह, वह है। एक नहीं हो पा रहे। आकांक्षा है अद्वैत की लेकिन वह बाहर तो फलित नहीं हो पाता। इस कोशिश में हम दूसरों को मिटाना शुरू कर देते हैं। उसके व्यक्तित्व को पोंछना शुरू कर देते हैं। लगता है इसकी वजह से हम दो, दो हैं। एक नहीं हो पा रहे। अगर यह व्यक्ति पूरी तरह समर्पित हो जाए, तब प्रेम की आकांक्षा पूरी होगी। लेकिन

इससे तो अहंकार का संघर्ष उत्पन्न हो जाएगा। इसलिए प्रेमी पति-पत्नी हों कि प्रेमी-प्रेमिका हों कि भाई-भाई हों निरन्तर संघर्ष चलता ही रहेगा। हर व्यक्ति दूसरे को मिटाने की कोशिश कर रहा है। आकांक्षा है अद्वैत की, प्रेम के मिलन की, लेकिन वह तो भीतर पूरी होती है।

'प्रेम गली अति सांकरी ता में दो न समाए।'

दिव्य प्रेम को जब जानोगे, जब परमात्मा के प्रेम में डूबोगे, प्रभु कृपा का जब अहसास होगा, परमात्मा के साथ जीवात्मा का जब मिलन हो जाएगा। दो-दो नहीं रहेंगे, अद्वैत फल जाएगा। तब जाकर तृप्ति होगी। इसलिए प्रेम की आकांक्षा भी बाहर पूरी नहीं होती। केवल भीतर भक्ति-भाव में ही डूब कर पूरी होती है।

पाँचवीं आकांक्षा ज्ञान की आकांक्षा है- जानने की उत्सुकता। उसी से विज्ञान पैदा होता है। फिलॉस्फीज होती हैं, दार्शनिक चिंतन-मनन उत्पन्न होता है, लेकिन देखते हो परिणाम विज्ञान कहाँ ले आया? एटम-बम्स, मिसाइल, न्यूक्लीयर वैपन्स, और स्टार वार और बायोलॉजिकल वैपन्स पर। यह जो ज्ञान की आकांक्षा थी, प्रकृति को उघाड़ने की इच्छा। इसका अंतिम परिणाम विश्व युद्ध और सारे जीवन की समाप्ति होगी। यह ज्ञान की आकांक्षा भीतर तृप्त हो सकती है। न तो दर्शनशास्त्र से और न ही विज्ञान से। जानने की आकांक्षा तब तृप्त होगी जब हम भीतर धम्म को जानें, ताओ को जानें, जीवन के महानियम को जानें। सुकरात जिसे कहता है सत्य, लाओत्सु जिसे कहता है ताओ, बुद्ध जिसे कहते हैं धम्म, नियम। विज्ञान ने प्रकृति के नियम खोजे। ध्यानी साधकों ने अपने भीतर अन्तरात्मा के नियम खोजे, चैतन्य के नियम खोजे। उसे वे कहते हैं सत्य। उसे जाने बगैर ज्ञान की आकांक्षा पूरी नहीं होगी और प्रकृति से कितने ही घूंघट उठाते जाओ, रहस्य कभी समाप्त नहीं होता। विज्ञान कभी समाप्त नहीं होता। हमेशा ऐसा लगता था कि अब हम क्लाईमैक्स पर पहुँच गए। इसके आगे और कुछ न हो

सकेगा। दस–बीस साल गुजरते हैं, नए वैज्ञानिक आकर पुराने ज्ञान को गलत सिद्ध कर देते हैं। वे कुछ और खोज लेते हैं। अंतहीन प्रक्रिया है। ज्ञान की आकांक्षा कभी भी तृप्त नहीं होगी। आइंस्टीन ने अपने अंतिम क्षणों में कहा कि अगला जन्म अगर मुझे मिले तो मैं फिजिसिस्ट बनना पसन्द नहीं करूँगा बल्कि एक साधारण गाँव का पलम्बर बनना पसंद करूँगा। जब आइंस्टीन की ज्ञान की आकांक्षा पूरी नहीं हुई तो और किसकी हो सकेगी। ज्ञान की आकांक्षा भीतर पूरी होती है। सुकरात की पूरी हुई, लाओत्सु की पूरी हुई। बुद्ध और महावीर और कबीर की पूरी हुई।

ज्ञान की आकांक्षा के बाद छटवीं आकांक्षा है महत्वकांक्षा। लोग मुझे जानें। मेरा यश हो, मेरा नाम हो, मेरा महत्व लोग स्वीकारें। यह आकांक्षा भी पूरी नहीं होती। अरबों–खरबों लोग हैं। आगे होते रहेंगे। जैसे मैं अभी कह रहा था कि इतिहास के लोग गालियाँ देंगे अगर आपने इसको पूरी करने की कोशिश की तो। कोई यश–वश नहीं होने वाला। सिवाय गालियों के कुछ नहीं मिलने वाला।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरूद्दीन एक नए शहर में पहुँचा। उसको वहाँ के मेयर से कुछ काम था। पहली बार इस अजनबी शहर में आया। उसने स्टेशन पर पूछा कि मेयर का घर कहाँ है? जिस कुली से पूछा था उसने नाक–मुँह सिकोड़कर कहा– उस हरामखोर का घर सब जानते हैं। तुम जाओ शहर में मिल जाएगा। बच्चा–बच्चा जानता है। नसरूद्दीन थोड़ा नाराज हुआ कि यह आदमी थोड़ा नाराज है। उसने एक पनवाड़ी से पूछा कि मेयर साहब का मकान कौन–सा है? उसने गुस्से से देखा और कहा– कि तुम उस कुत्ते के कोई रिश्तेदार हो? नसरूद्दीन थोड़ा डरा उसने सोचा कि इस आदमी की बड़ी बदनामी है। वह और आगे बढ़ा, एक बूढ़ी स्त्री से पूछा– मेयर साहब कहाँ रहते हैं? उसने और भद्दी गाली देते हुए, जो कि स्त्री के लिए उचित भी नहीं थी वे गाली देते हुए, पुरूषोचित गाली देते हुए कहा कि उस

हरामखोर का मकान गली के अंत में है। नसरूद्दीन उस मकान में पहुँचा। मेयर साहब से जाकर परिचय किया और उसने कहा कि आप कब से मेयर हैं? उसने कहा कि चार साल हो गए। एक साल और बाकी है इस पोस्ट में। नसरूद्दीन ने पूछा कि आपकी कितनी सैलरी है। तनख्वाह कितनी मिलती है? मेयर ने कहा कि तनख्वाह के लिए नहीं, यह तो बस नाम के लिए, प्रतिष्ठा के लिए पद को संभाले हूँ। नाम की खातिर, प्रतिष्ठा। बस तुम्हीं भर सोच रहे हो कि प्रतिष्ठा है। किसी से पूछो तो सही।

असली प्रतिष्ठा स्वयं में प्रतिष्ठित होने में है- आत्म प्रतिष्ठा। वह महत्वकांक्षा पूरी होगी इसलिए नहीं कि लोग मुझे जानें बल्कि मैं स्वयं को जानूँ। आत्मज्ञान से पूरी होगी। लोग मुझे जानें, उससे मुझे कोई तृप्ति नहीं होने वाली। मैं स्वयं को जानूँ सैल्फ रिलाइजेशन। वह तो ध्यान से, साक्षी में डूबने से होगी।

सातवीं आकांक्षा है धन की आकांक्षा, संपत्ति की आकांक्षा। वास्तव में ज़रा गहराई से खोजना। हम ज्यादा धनवान होकर क्या करना चाहते हैं? हम अपनी सीमाओं का विस्तार करना चाहते हैं। पुराने राजा, महाराजा अपने साम्राज्य को बढ़ाने में लगे रहते थे। जितना ज्यादा धन होगा, उतना ही ज्यादा वैभव होगा, उतनी ही बड़ी मेरी सीमा होगी। लेकिन याद रखना सीमा तो तब भी होगी। ओशो ने एक बड़ी मजेदार कहानी सुनाई है- सिकंदर जब विश्व विजय को निकला था तब डायोजनीज नाम के एक यूनानी फकीर ने उससे पूछा- क्या कभी तुमने इस बात पर गौर किया कि आप पूरी दुनिया जीत लेने के बाद फिर तुम क्या करोगे? क्योंकि एक ही दुनिया है और कहते हैं कि सिकन्दर के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। यह कभी सोचा ही नहीं था कि एक ही तो दुनिया है। जीत लिया फिर दूसरी तो कोई दुनिया है नहीं। पूरी दुनिया जीत लो तब भी सीमा तो रहेगी। सब कुछ तुम्हारा हो जाए इस जगत में तब भी सीमा रहेगी। अस्तित्व अत्यन्त विराट है। अनंत-अनंत दूर तक

फैला हुआ है। तुम एक पृथ्वी के मालिक भी बन गए तो क्या होगा? इसलिए धन की आकांक्षा वास्तव में असीम होने की आकांक्षा है। और वह भी भीतर ही पूरी हो सकती है। क्योंकि तुम्हारी चेतना परमात्मा से जुड़ी हुई है। सारे ब्रह्माण्ड के चैतन्य के साथ एक है। वहाँ असीमता का, विराटता का बोध होता है। इसलिए ब्रह्म ज्ञान से तृप्ति मिलेगी। मीरा कहती है–

'पायो जी मैंने राम रतन धन पाओ।'

असली धन अब पाया। राम को पाया, ब्रह्म को पाया। बाहर के रत्नों से क्या होगा? तो बाहर के धन की और सम्पत्ति की आकांक्षा; सीमा को फैला सकते हैं हम; बड़ा कर सकते हैं। लेकिन फिर भी सीमा तो रहेगी ही रहेगी। असीम और विराट होने का तो एक ही मार्ग है, वह है– ब्रह्म ज्ञान और कैवल्य ज्ञान। ये सात हमारी मुख्य आकांक्षाएं हैं।

एक और है आठवीं आकांक्षा, ज़रा सूक्ष्म बात है समझना। महान मनस्विद सिग्मन फ्राइड ने अपने जीवन के अतिंम वर्षों में एक विचित्र खोज की। यह बात उसके स्वयं की पुरानी खोजों के विपरीत जा रही। उसने खोजा कि मनुष्य के भीतर मृत्युेष्णा भी है। मरने की आकांक्षा भी है। बड़ी अजीब लगी यह बात। लेकिन हजारों लोगों के जीवन का निरीक्षण करके उसने निष्कर्ष निकाला कि आदमी के भीतर मरने की इच्छा भी है। क्या तुम सोचते हो बसंत में जो फूल खिलते हैं एक दिन नहीं लगता होगा कि अब कुम्हला जाएँ, मुरझा जाएँ और वापिस जमीन में मिल जाएँ। फिर भूमि में साथ हो जाएँ। हर चीज थक जाती है। जिन्दगी भी थक जाती है और वापिस मौत में विश्राम करना चाहती है। अक्सर बूढ़े लोग कहने लगते हैं कि हे प्रभु! कब उठाओगे? भीतर मृत्युेष्णा है। फ्रायड को बड़ी मुश्किल हुई इस बात की खोज करने में। क्योंकि उसी ने जीवेष्णा की खोज की थी। अब अपनी ही फिलास्फी के विपरीत बात कहना कठिन था लेकिन ईमानदार था। इसलिए कहा कि हाँ, ऐसा है। लोग मर जाना भी चाहते हैं, एक समय के बाद।

इसलिए मैं इसको भी गिन रहा हूँ आठवीं आकांक्षा। मृत्यु की आकांक्षा वह भी जगत में पूरी नहीं होगी। यहाँ कितने ही मरो लेकिन मरते नहीं हैं। आत्महत्या भी कर लो तो भी आत्महत्या होती नहीं सिर्फ देह हत्या होती है। वह आत्मा फिर जन्म ले लेती है। फिर नया जन्म। फिर नई जीवेष्णा से शुरू। तो मृत्येुष्णा भी पूरी तभी होगी जब आवागमन से मुक्ति हो जाए, निर्वाण हो जाए। निर्वाण का अर्थ है दीपक का बुझ जाना। वह महामृत्यु है। महापरिनिर्वाण अब सदा-सदा के लिए विदा हो गए। अब लौटना नहीं होगा। बुद्ध कहते थे अनागामी हो गए। अब दोबारा आगमन नहीं होगा। तो यह तो मोक्ष की आकांक्षा है। यह तो मुमुक्षा है। यह तो निर्वाण की आकांक्षा है।

हमारी मुख्य रूप ये आठ आकांक्षाएं हैं, संक्षेप में फिर से गिना दूँ -जीवेष्णा, सुख की आकांक्षा, शक्ति की आकांक्षा, प्रेम आकांक्षा, ज्ञान की आकांक्षा, यश की आकांक्षा, धन की आकांक्षा और मृत्येुष्णा। मृत्येुष्णा को अन्य शब्दों में स्वतन्त्रता की आकांक्षा भी कह सकते हैं। क्योंकि अंतिम बंधन स्वयं के होने का रह जाता है। मैं हूँ, यह भी एक प्रकार का बंधन ही है। न हो जाऊँ। अनअस्तित्व। सूफी फकीर जिसे कहते है- फना हो जाना, मिट जाना। ये आठों आकांक्षाएँ भीतर ही पूरी हो सकती हैं। जीवेष्णा पूरी होगी, अमृत शाशवत चैतन्य को जानकर, सुख की आकांक्षा पूरी होगी अतीन्द्रिय समाधि की अनुभूतियों में दिव्य ध्वनि, दिव्य प्रकाश, दिव्य स्वाद, दिव्य सुगन्ध, दिव्य खुमारी, दिव्य स्पर्श को जानकर तब आनन्द फलेगा। बाहर तो केवल सुख-दुःख की धूप-छाया का खेल चलेगा। आनन्द है भीतर। अतिइन्द्रिय है वह। शक्ति की आकांक्षा भीतर की निराकार ऊर्जा को जानकर; आदिशक्ति को पहचानकर पूरी होगी। प्रेम की आकांक्षा भक्ति में। जीवात्मा के परमात्मा के मिलन में पूर्ण होगी। बाहर के जगत में कभी पूरी नहीं हो सकती। ज्ञान की आकांक्षा सत्य को, ताओ को जानकर पूरी होगी। तब समझ विकसित होगी। प्रज्ञा चक्षु खुलेगा। तब असली ज्ञान घटित होगा।

इसलिए हम उसको परम ज्ञान कहते हैं।

और अन्तिम तीन बातें यश की आकांक्षा, धन की आकांक्षा और मैं से भी स्वतंत्र हो जाने की आकांक्षा इन तीनों की पूर्ति होगी क्रमशः आत्म ज्ञान, ब्रह्म ज्ञान और निर्वाण में। आत्मज्ञान में हम जानेंगे स्वयं को कि- 'मैं कौन हूँ।' ब्रह्म ज्ञान या कैवल्य ज्ञान में वह मैं विस्तीर्ण हो जाएगा ब्रह्म स्वरूप हो जाएंगे। असीम विराट के साथ एक हो जाएगा। परम धन को जान लिया। अहं ब्रहास्मि। लेकिन अभी भी केवल अस्तित्व को जाना है। अभी सिर्फ दिन को जाना है रात को नहीं। अनअस्तित्व भी है। नॉन एगजिस्टेंसियल भी है। वह महामृत्यु है निर्वाण। फना हो जाना।

अब संक्षेप में समझ लें कि ये आठ प्रकार की कामनाएँ हैं, जिनके पीछे हम जिन्दगी भर दौड़ते हैं। किन्तु ये पूरी तो होती नहीं। इनकी पूर्ति करने का एक ही उपाय है। वह है अध्यात्म। इसलिए अध्यात्म को जिन्दगी के खिलाफ, जीवन से विपरीत न समझो, वह जीवन की पूर्णाहुति है। उसके बिना सब अधूरा-अधूरा है। सब खाली-खाली है। तुम्हारी व्यस्तता बिना काम की व्यस्तता है। आज तक इन आठों आकांक्षाओं को कोई बाहर पूरी न कर सका। तुम भी न कर सकोगे। व्यर्थ को व्यर्थ की भांति जानो ताकि सार्थक को पहचान सको और वह सार्थक तुम्हारे भीतर मौजूद है। ठीक इसी व्यस्त जीवन में उसकी खोज संभव है। सदा-सदा ऐसा ही था। अतीत में भी मनुष्य व्यस्त था, आज भी है, भविष्य में भी रहेगा। इसी व्यस्त जीवन में जो समझदार थे, उन्होंने अपने भीतर डुबकी लगा ली। जो नासमझ थे वे बाहर-बाहर भटकते रहे और जिन्दगी को व्यर्थ गंवाते रहे।

आज की चर्चा को यहीं समाप्त करते हैं।

बहुत बहुत धन्यवाद।

ज्ञान की व्यर्थता

नमस्कार,

बहुत सारे सवाल मित्रों ने भेजे हैं। इसके पहले कि मैं आपके सवालों का जवाब दूँ, एक छोटी सी कहानी आपसे कहना चाहूँगा।

आज से करीब सौ साल पहले की घटना है। एक अंग्रेज साधक भारत आकर अध्यात्म की साधना करना चाहता था। उस समय अंग्रेजों का राज्य था। उसने अपने एक मित्र से जो कि भारत में ही रहता था, सरकारी अधिकारी था; उससे पूछा कि मैं सद्गुरु की खोज में कहाँ जाऊँ? उसके मित्र ने कहा– यूँ तो बहुत गुरु हैं, किन्तु मैं चार–पाँच नाम बताता हूँ। इन जगहों पर आप विशेषकर जाइए और एक बात का ख्याल रखिएगा कि जब भी जाएं कम से कम एक महीना रुकिएगा। वहाँ गुरु जो समझा रहे हैं, उसको करिएगा। सिर्फ प्रवचन सुनने से बात नहीं बनती। साधना करनी होगी और धीरज

भी रखना होगा। सबसे पहली जगह वह गया... दक्षिण भारत में एक छोटे से गाँव में कोई साधु रहा करते थे, उनके पास पहुँचा। छोटा-सा आश्रम था। बीस-पच्चीस लोग वहाँ रहते थे। उसने वहां उस साधु के प्रवचन सुनें लेकिन उसको कुछ खास वहां जंचा नहीं। साधु की बातें थोड़ी-सी थीं। होशपूर्वक काम करो, प्रेम से रहो, शांत रहो। ध्यान में डूबो। बस ऐसी दो-चार बातें थीं। सुबह-शाम वही का वही उपदेश वह दिया करता था। तीन-चार दिन में वह अंग्रेज ऊब गया। उसने कहा कि कुछ खास लग नहीं रहा। न कोई बड़े सिद्धान्तों की बातें हैं, न कोई फिलॉस्फी, न कोई दर्शनशास्त्र, न कोई अध्ययन-मनन, न कोई वहाँ पुस्तकालय है। न ही कोई ज्ञान की ऊँची बातें हो रहीं हैं। उसने सोचा कि यहाँ से तो चले जाना चाहिए। फिर खबर आई कि अगले हफ्ते कोई युवा साधु वहाँ आने वाला है, जिसका बड़ा नाम है। उसका प्रवचन इस आश्रम में होगा। इस अंग्रेज ने सोचा कि फिर एक हफ्ते और रुक जाता हूँ। इस बूढ़े साधु में तो कुछ खास बात नहीं है। इसकी शिक्षाएं तो बड़ी साधारण हैं। यह तो पहले से ही पता है कि ध्यानपूर्वक काम करो और शांति से रहो और प्रेम से जीओ। एक हफ्ते और वह रुका। इस इंतजार में कि वह युवा साधु आने वाला है। बाहर से मेहमान के रूप में, उसका प्रवचन सुना जाए।

युवा साधु आया उसके साथ फौज-फांटा था, बड़ा धूम-धड़ाका था। उस युवा साधु ने शाम को बड़े-बड़े सिद्धान्तों की बातें की। सृष्टि की रचना कैसे हुई? इस पर विभिन्न विद्वानों के क्या-क्या मत हैं... उसने तर्क-वितर्क से सिद्ध किया कि कौन-सा मत गलत है, कौन-सा मत सही है। प्रलय होगी कि नहीं? होगी तो कब होगी? बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें थीं, सूक्ष्म तर्कजाल थे, और कुछ सिद्धान्त तो इतनी क्लिष्ट भाषा में थे कि समझना भी मुश्किल था। वह अंग्रेज बहुत प्रभावित हुआ। उसने कहा कि यह युवा साधु ही असली साधु, असली ज्ञानी है। अपने साथ मंच पर किताबों का ढेर लगाकर बैठा है। बीच-बीच में किताब उठाकर उदाहरण पेश करता कि देखो फलां

ग्रन्थ में, अमुक ऋषि ने ऐसा कहा। इस शास्त्र में ऐसा सिद्धान्त है। फिर वह उसको सही या गलत सिद्ध करता। करीब डेढ़-दो घण्टे उसने लम्बा प्रवचन दिया। लगभग बीस किताबों से उसने कोटेशन उद्धृत किए।

अंग्रेज बहुत प्रसन्न हुआ। लोग तालियाँ बजा रहे थे। वह अंग्रेज सोचने लगा कि बेचारे उस बूढ़े संन्यासी पर क्या बीत रही होगी! उसे तो कुछ ज्यादा आता नहीं। किताबों के बारे में उसका कोई ज्ञान नहीं। शास्त्रों और सिद्धांतों को जानता नहीं। वह तो तीन-चार छोटी-छोटी बातें बताता है बस। इस प्रभावशाली युवा को देखो...। मोटी-मोटी पुस्तकों के उद्धरण, तर्क-वितर्क, यह है ऊँचा ज्ञान। वह अंग्रेज सोचने लगा कि उस बूढ़े संन्यासी पर तो बड़ी बुरी गुजर रही होगी। उसको लग रहा होगा कि अरे मेरे आश्रम में आकर ही इस मेहमान साधु ने अपना रौब जमा लिया और मैं तो बिल्कुल ही फीका पड़ गया। दो घण्टे बाद जब प्रवचन समाप्त हुआ, तब उस युवा साधु ने वृद्ध साधु से पूछा कि आपको मेरी बातें कैसी लगीं? बूढ़े साधु ने कहा कि क्षमा करें, मैं दो घण्टे से प्रतीक्षा कर रहा हूँ सुनने की कि आप कुछ कहेंगे। आपने तो कुछ कहा ही नहीं। और आप पूछ रहे हैं कि 'मेरी बातें कैसी लगीं'? मैंने तो आपकी कोई बात सुनी ही नहीं। आपने कोई बात कही ही नहीं। आप के मुख से किताबें बोल रही थीं। आप तो कुछ बोले ही नहीं। दो घण्टे में अपना एक शब्द भी आपने उच्चारण नहीं किया।

उस अंग्रेज ने अपने संस्मरण में लिखा कि मैं थोड़ा चौंका। बात तो सही थी। युवा साधु ने जो कुछ भी कहा था, जिसको सुनकर मैं इतना प्रभावित हो रहा था; वास्तव में वे तो सब किताबों की बातें थीं। उसकी अपनी कौन-सी बात थी? खुद की कोई भी बात नहीं थी। तब उसे समझ में आया कि यह वृद्ध साधु, माना कि तीन-चार बातें ही कह रहा है बस; लेकिन वे बातें उसके जीवन से निकल रही हैं। वे नकद हैं, उधार नहीं। कोई किताबी ज्ञान नहीं, उसकी स्वयं की जिंदगी का अनुभव है।

जीवन जल रहा है

प्यारे मित्रो, आपसे भी यही एक विनती करना चाहता हूँ। आपके प्रश्नों का उत्तर जरूर दूँगा। लेकिन मेरा उत्तर, आपका उत्तर नहीं हो सकता। मेरा अनुभव आपका ज्ञान नहीं बन सकता। आपको खुद अपनी ही खोज करनी होगी। जिन्दगी में छोटी-छोटी चीजें भी केवल 'अपनी' ही काम आती हैं। आप भोजन करते हैं तो आपका पेट भरता है। मैं पानी पीता हूँ, मेरी प्यास बुझती हैं। मेरे पानी पीने से आपकी प्यास नहीं बुझ सकती। मैं प्रेम करता हूँ, तो मैं जानता हूँ कि प्रेम का अनुभव क्या है? मैं किसी को समझा नहीं सकता, बता नहीं सकता। नींद क्या होती है? जो व्यक्ति सोता है, वह जानता है। जागरण क्या होता है? हम अपने अनुभव से जानते हैं। हम किसी को समझा नहीं सकते। एक आदमी अंधा है और आप उसे प्रकाश के बारे में समझाएं कि प्रकाश क्या है? तब आपको पता चलेगा कि कैसी मुश्किल खड़ी हो गई। अगर आप समझाने में सफल भी हो गए तो भी उस व्यक्ति का टटोलना बंद नहीं होगा। उसे दिखाई नहीं पड़ेगा। उसकी तो आँखों का इलाज करना होगा। प्रकाश के बारे में समझाने से कुछ न होगा। तो सबसे पहले आपसे मैं विनती कर दूँ- मैं आपको प्रकाश के बारे में समझाने नहीं आया हूँ। यहाँ जो कुछ भी मैं कहूँगा वह अधिक से अधिक केवल एक आमंत्रण है कि आँखों का इलाज हो सकता है। निमंत्रण है... शायद मेरी बात सुनकर आपको अपना अंधापन ख्याल में आ जाए और शायद आँख का इलाज कराने की अभीप्सा भीतर पैदा हो जाए।

ओशो ने अपने प्रवचन में एक बहुत प्यारी बोध-कथा कही है- एक बूढ़ा आदमी था। 85 साल उसकी उम्र हो गई। आँखों में मोतियाबिन्द के कारण दिखाई पड़ना बंद हो गया। घर के लोगों ने कहा कि इलाज करवा लें। ऑप्रेशन करवा लें। लेकिन उसने कहा कि नहीं। अब इस बुढ़ापे में मुझे देखना भी क्या है? मेरे आठ बेटे हैं, उनकी सोलह आँखें हैं। आठ बहुएं हैं

मेरी सेवा करने वाली। सोलह आँखें उनकी हैं। मेरी पत्नी की आँखें सही सलामत हैं। घर में चौतीस आँखें हैं मेरी देख-रेख करने के लिए। दो आँखें नहीं भी रहीं तो क्या फर्क पड़ता है? मुझे जीना कितना है? पच्चासी साल का तो हो गया हूं। कहाँ ऑप्रेशन करवाऊँगा? व्यर्थ तकलीफ होगी। रहने दो। बहुत लोगों ने समझाया लेकिन वह नहीं माना। उसने ऑप्रेशन नहीं कराया। फिर एक रात ऐसा हुआ। गर्मी के दिन थे। अचानक पूरे मौहल्ले में आग लग गई। इसके मकान में भी आग लग गई। वे चौतीस आँखें आग लगे मकान के बाहर हो गईं और वह बूढ़ा आदमी जल गया। जब सारे लोग बाहर निकल गए, तब उनको ख्याल आया कि वह वृद्ध व्यक्ति तो भीतर रह गया। लेकिन तब भीतर जाना और बचाना संभव न था। देर हो चुकी थी। मकान भस्मीभूत हो गया। ज़रा सोचो उस बूढ़े पर क्या बीती होगी उस समय। उस समय उसे ख्याल आया होगा कि जब आपातकालीन स्थिति आती है, तब केवल अपनी ही आँखें काम आती हैं। न हम दूसरों की आँखों से देख सकते। न दूसरे के कानों से सुन सकते हैं।

जीवन के जो परम अनुभव हैं- परमात्मा के, आत्मज्ञान के, ध्यान के, समाधि के वे कैसे दूसरों के माध्यम से हो सकेंगे? शास्त्र काम न आएंगे, गुरु काम न आएंगे, कोई सिद्धांत और प्रवचन काम न आएंगे। स्वयं ही खोजबीन करनी होगी। इस भूमिका के साथ, अब आपके प्रश्नों के उत्तर दूँगा। ताकि आपको स्पष्ट हो जाए कि मेरे उत्तर वास्तव में उत्तर नहीं हैं। केवल प्यास जगाने की एक कोशिश है कि आपको अपना अंधापन ख्याल में आए और आप आँख का इलाज कराने में उत्सुक हो जाएं। क्योंकि हमारी जिन्दगी का यह महल जल रहा है। ऐसा नहीं कि एक दिन आग लगेगी। आग लगी ही हुई है। हम इतने अंधे हैं कि हमें आग भी दिखाई नहीं पड़ रही। हमें तब पता चलता है, जब आग सब-कुछ जला देती है। मृत्यु के क्षण में हमें अहसास होता है कि सारा जीवन हम धू-धू करके जल रहे थे। काश हमें बीच में ख्याल आ जाए कि जीवन जल रहा

है और इससे बाहर निकलने का उपाय है।

प्रश्न– मेरे घर में अशांति का माहौल रहता है। यद्यपि सब लोग गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ पढ़ते हैं। क्या हमारे लिए ध्यान करना जरूरी है?

गौर से देखें, प्रश्न में ही स्पष्ट है। जो इलाज आप कर रहे हो, वह तो काम नहीं आया। स्पष्ट है कि वह औषधि नहीं है। उससे अंधापन दूर नहीं हुआ। गुरु ग्रन्थ साहब या गीता पढ़ने से, कुरान अथवा पुराण पढ़ने से, बुद्ध या ईसा मसीह के वचन पढ़ने से अशान्ति दूर नहीं होती। नानक, महावीर, मोहम्मद, कृष्ण को अवश्य शांति प्राप्त हुई होगी। लेकिन उनके वचन पढ़ने से आपकी अशान्ति दूर नहीं हो सकती। बुद्ध कितने ही शान्त रहे हों बुद्ध के वचन पढ़ने से केवल आपके दिमाग का बोझ बढ़ेगा और कुछ भी नहीं होगा। स्वयं बुद्ध ने धम्मपद नहीं पढ़ा था, न राम ने रामायण और न ही कृष्ण ने गीता पढ़ी थी। नानक के समय गुरु ग्रंथ नहीं था, मोहम्मद के वक्त कुरान नहीं थी। बेचारे कबीर, रैदास और दादू को तो पढ़ना ही नहीं आता था। मगर उन्होंने भी परम शांति पा ली।

आपको भी अपनी शान्ति की तलाश खुद ही करनी होगी। ध्यान उसी शान्ति की तलाश का नाम है। न गुरु ग्रन्थ साहब पढ़ने से, न कोई और ग्रन्थ पढ़ने से शान्ति हो सकती है। ग्रन्थ पढ़ने से तो विचारों की भीड़ दिमाग में और बढ़ेगी। दिमाग पर भार पड़ेगा। पहले से ही इतना भार है। नया भार जोड़ने से कुछ लाभ न होगा। निर्भार होना है, निर्विचार होना है, निर्ग्रन्थ होना है। मन बिल्कुल शून्य हो जाए तो शान्ति हो सकती है। किसी किताब के पढ़ने से ऐसा न होगा। निश्चित रूप से ध्यान में डूबना है और ध्यान से मेरा तात्पर्य विचार–शून्य जागरुकता में स्थित होना है। आगे के प्रश्नों में ध्यान की बात और गहराई से समझ में आ सकेगी।

कोई और जिम्मेवार है

प्रश्न- आम धारणा प्रचलित है कि परमात्मा के हुक्म के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। तो फिर संसार में इतने अत्याचार और जुल्म क्यों होते हैं? क्या सब भगवान करवाता है?

आमतौर से जो भी धारणाएं प्रचलित हैं, वे आमतौर से गलत ही होती हैं। आम आदमी ही गलत है और अंधा है। इसलिए कोई आम धारणा सही हो ही नहीं सकती। सत्य विरले लोगों ने जाना है। भीड़ ने कभी सत्य को नहीं जाना। और इसलिए भीड़ जिस बात को मानती है, निन्यानवे दशमलव नौ प्रतिशत संभावना है कि वह बात गलत ही होगी। वर्ना इतने सारे गलत लोग उसे मान नहीं सकते थे। इन व्यर्थ की बातों में न उलझो कि जुल्म और अत्याचार कौन करवा रहा है? कि परमात्मा की मर्जी के बिना पत्ता हिलता है कि नहीं? जाकर पत्ते से पूछो, मुझसे न पूछो। मुझे नहीं पता। मुझे पता है कि मेरे भीतर चैतन्य है, बुद्धिमत्ता है, उसके द्वारा मैं काम करता हूँ। आप अपने भीतर तलाशो। आपके भीतर मन मिलेगा, बुद्धि मिलेगी, विवेक मिलेगा, चैतन्य मिलेगा। वही आपसे यह प्रश्न भी पुछवा रहा है। जबरदस्ती परमात्मा को बीच में न लाओ। परमात्मा की मर्जी.... कौन सिद्ध करेगा कि परमात्मा की मर्जी क्या है? अगर परमात्मा की मर्जी से अत्याचार और जुल्म होते हैं तो उसे भगवान कहोगे या फिर शैतान कहोगे? अगर वही आतंकवादी बनाता है और वही युद्ध करवाता है तो फिर वह भगवान है या कि शैतान है? व्यर्थ की बातों में न उलझो। तुम्हें इससे क्या लेना-देना?

अपने जीवन को संवारना सीखो। तुम्हारे भीतर सद्‌भावनाएं हैं और दुर्भावनाएं भी हैं। तुम्हारे भीतर की सद्‌भावनाएं तुम्हारे चैतन्य से आती हैं। तुम्हारे भीतर की दुर्भावनाएं तुम्हारे भीतर की मूर्च्छा से आती हैं। सीधे-सीधे तथ्यों को देखो। जब तुम होशपूर्ण होते हो तुम्हारे जीवन में शुभ कर्म होते हैं। जब तुम बेहोश होते हो... समझो क्रोध का नशा तुम पर

छा गया, कि कामवासना की मूर्च्छा ने घेर लिया, कि लोभ या मोह में पड़ गए... तब तुमसे दुष्कृत्य होते हैं। भगवान और शैतान की बात छोड़ो। अपने भीतर टटोलो। तब स्पष्ट हो जाएगा पुण्य से कैसे अपने जीवन को भरें और होश को बढ़ाएं। पाप से कैसे बचें? वह जो जुल्म और अत्याचार करने की भावना हमारे भीतर मौजूद है, बुराई और अशुभ काम करने की दुर्भावना पनपती है; वह कहां से पनपती है? उनकी जड़ों को उखाड़ें। छोड़ें कौन करवा रहा है, कौन नहीं करवा रहा? उसकी वह जाने। हमारे जीवन में जो हो रहा है, वह हमारे लिए महत्वपूर्ण है। उसके लिए हम जिम्मेवार हैं। किसी और पर जिम्मेवारी न टालो।

ये हमारे बहाने हैं कि परमात्मा की मर्जी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। हम कुछ करना नहीं चाहते। हम आलसी हैं। इसलिए इस प्रकार की धारणाएं हमें बड़ी पसन्द आती हैं। यही मैं कह रहा था कि आमतौर से जो धारणाएं प्रचलित हैं, वे आमतौर से गलत ही होती हैं। कुल मिलाकर उनके भीतर एक सूत्र छिपा होता है कि 'मैं जिम्मेवार नहीं हूं'। कोई और जिम्मेवार है। किसी जमाने में माना जाता था कि विधाता ने किस्मत में लिखकर भेजा है। सब कुछ तुम्हारे माथे पर लिखा है। कोई कहता है ग्रह-नक्षत्र जिम्मेवार हैं। ग्रह दशाएं ऐसी हैं भला हम क्या कर सकते हैं? कोई कहता है ज्योतिष का आधार लेकर, कि हस्त रेखाओं में लिखा है। हमें ये बातें बड़ी पसन्द आती हैं। क्योंकि हमारी जिम्मेवारी समाप्त हो जाती है। अगर फिर मैं बुराई कर रहा हूँ, क्रोध कर रहा हूँ, नाराज हो रहा हूँ, हिंसा कर रहा हूँ; उदास हूं, चिंतित या दुःखी हूं तो मैं क्या कर सकता हूँ, मेरी हस्त रेखाओं में ऐसा लिखा है। मेरी जिम्मेवारी समाप्त... यह तो बड़ी चालाकी भरी बात हो गई।

फिर नया युग आया। पुरानी बातें पुरानी पड़ गई। लोगों का विश्वास हट गया ईश्वर पर से, विधाता पर से, किस्मत से, हस्त रेखाओं से। कार्ल मार्क्स ने कहा कि दुनिया में इतना दुःख इसलिए है क्योंकि वर्ग संघर्ष है। गरीब-अमीर का भेद है। जब तक यह रहेगा दुनिया में शान्ति नहीं हो

सकती। हमें यह बात बड़ी पसन्द आई। आधी दुनिया कम्युनिस्ट हो गई। इसलिए नहीं कि मार्क्स का सिद्धान्त सही था। वरन् इसलिए कि हमको फिर एक नया बहाना मिल गया। हमारे जीवन के दु:खों का जिम्मेवार वर्ग-भेद है। गरीब-अमीर का भेदभाव मिटना चाहिए। तब शान्ति होगी। आधी दुनिया समाजवादी हो गई। लेकिन कोई दु:ख मिटा नहीं। चीन और रूस को वापस पूंजीवादी होना पड़ा। मार्क्स की बात गलत साबित हुई। लेकिन आधी दुनिया प्रभावित हो गई थी, इसलिए नहीं कि सिद्धान्त में कोई दम है। बल्कि इसलिए कि उसने ईश्वर, विधाता, ग्रह नक्षत्र, हस्तरेखा आदि पुराने शब्दों के स्थान पर एक नया शब्द दे दिया। हमारे दु:ख के लिए गरीब-अमीर के वर्ग-भेद को जिम्मेदार ठहरा दिया।

फिर करीब सौ साल पहले आया सिगमंड फ्रायड, मनोविज्ञान का जन्मदाता; उसने कहा कि नहीं यह जो माता-पिता ने पालन-पोषण बचपन में किया है, वे जिम्मेवार हैं। जिस ढंग से तुम्हारे मन में संस्कार डाले गए हैं उसकी वजह से तुम ऐसे हो। तुम्हारी कोई जिम्मेवारी नहीं है। तुम्हारा अचेतन मन, अनकॉन्शस माइन्ड जिम्मेदार है। यह बात फिर हमें बड़ी जंची। इसलिए नहीं कि हमको पता है अचेतन मन के बारे में, बल्कि इसलिए कि पुन: एक नया बहाना मिला। अगर मैं हिंसक हूँ तो मैं क्या कर सकता हूँ! बचपन में मेरे ऐसे संस्कार पड़ गए। अगर मैं लोभी प्रवृत्ति का हूँ तो क्या कर सकता हूँ! मेरे अचेतन मन में लोभ मौजूद है। मेरा लालन-पालन ऐसा हुआ। परिवार ने, समाज ने मेरे मन में लोभ बिठा दिया। बस, मेरी जिम्मेवारी खत्म।

अभी दो साल पहले जर्मन के एक जैनेटिक इंजीनियर आए हुए थे समाधि का प्रोग्राम करने। बड़े उदास, चिड़चिड़े, गुस्सैल किस्म के, डिप्रेशन के बीमार। मैंने उनसे कहा कि आप इतने नाराज क्यों रहते हैं, हमेशा परेशान दिखते हैं? वह कहने लगे कि मैं क्या कर सकता हूँ मेरे जीन्स ही ऐसे हैं? मैंने कहा- जीन्स? वे कहने लगे कि हाँ, मेरे माता-पिता भी बहुत उदास और गुस्सैल थे, मेरे दादा-दादी भी और मेरे नाना-नानी भी। दोनों तरफ से

मेरे क्रोमोसोम्स, मेरे जीन्स, ऐसे खराब मिले... मेरी अनुवांशिक रचना ही ऐसी है। इनकी बात सुनने में बड़ी वैज्ञानिक लगेगी, जैनेटिक इंजीनियर की भाषा। बड़ी वैज्ञानिक टर्मिनोलॉजी में ये वही दकियानूसी बात कह रहे हैं कि कोई और जिम्मेवार है। मैं जिम्मेवार नहीं हूँ।

फिजूल की बातें न पूछें कि परमात्मा के हुक्म के बिना पत्ता हिलता है कि नहीं। अपनी जिम्मेवारी अपने कन्धों पर लो। मेरी बात सुनकर आपको तकलीफ होगी। क्योंकि फिर सवाल यह उठता है कि अगर मैं दु:खी हूँ तो फिर मैं ऐसा क्यों हूँ? अगर मैंने स्वयं ही अपना दु:ख निर्मित किया है तो क्या मैं विक्षिप्त हूँ? क्या मैं पागल हूँ? लेकिन याद रखना अगर तुमने अपनी जिम्मेवारी स्वीकारी तो उसमें से बाहर निकलने का रास्ता भी निकलता है। अगर ग्रह, नक्षत्र जिम्मेवार हैं या ईश्वर या हस्त रेखाएं या जैनेटिक्स अथवा समाज की आर्थिक संरचना जिम्मेवार है; तब याद रखना फिर तुम्हारे मुक्त होने का फिर कोई उपाय नहीं। तो सुनने में बड़ी सांत्वना मिलती है कि कोई और जिम्मेवार है। पर याद रखना फिर हमारी कोई स्वतंत्रता नहीं है। फिर मनुष्य होने की गरिमा नष्ट हो जाती है। फिर तो हम मशीन के समान हैं। किसी ने हमारे भीतर प्रोग्रामिंग भर दी है। जैसे कम्प्यूटर में प्रोग्राम डालते हैं और कम्प्यूटर वैसा ही चलने लगता है।

अपनी जिम्मेवारी पहचानो और इस जिम्मेवारी से ही मनुष्य की गरिमा और महिमा प्रकट होगी। फिर तुम एक स्वतंत्र व्यक्ति बन सकोगे। कहीं कोई ऊपर ईश्वर नहीं बैठा है, जिसकी मर्जी से पत्ते हिल रहे हैं। जीवन का नियम समझो, अंतस को पहचानो, और अपने आत्म-रूपांतरण के पथ पर चलो।

प्रश्न- प्रेम क्या है?

प्रेम को हम तीन हिस्सों में बांट कर समझें तो आसान होगा। एक पाशविक प्रेम, दूसरा मानवीय प्रेम और तीसरा भागवत प्रेम।

शरीर से शरीर का प्रेम अर्थात् कामवासना पाशविक है। मन का मन से प्रेम यानी मित्रता मानवीय है और आत्मा का सर्वात्मा से प्रेम, सारे अस्तित्व से प्रेम भक्ति है। वह भागवत प्रेम है। सामान्यतः हम नीचे के दो प्रेमों को जानते हैं। मित्रता की थोड़ी-बहुत झलक हमें मिलती है। कामवासना का अनुभव तो जानवरों को, पक्षियों को, कीड़े-मकौड़ों को, सभी प्राणियों को है। मित्रता का अनुभव कुछ पशुओं को, कुछ पक्षियों को होता है जो ज्यादा विकसित किस्म के हैं। और मनुष्यों में भी सभी मनुष्यों को नहीं होता। केवल कुछ विकसित हृदय वाले मनुष्यों को होता है। इसलिए इसको मैं कह रहा हूँ मानवीय प्रेम। यह हमारी संभावना है- मन का प्रेम, शरीर से थोड़ा ऊपर। केवल काम ही नहीं, थोड़ा और गहरा- भावनात्मक लगाव, मैत्री भाव, मंगलभाव, सद्‌भाव, करूणा भाव। इसको कह सकते हैं मानवीय प्रेम। लेकिन यहाँ भी रुक मत जाना। इसके ऊपर प्रेम की एक और अवस्था है। उसका नाम है श्रद्धा, उसका नाम है भक्ति। वह प्रेम की पराकाष्ठा है। तो प्रेम के मुख्य तीन रूप हैं- एनिमल, ह्यूमन एण्ड डिवाइन लव। क्रमशः नीचे से ऊपर की ओर बढ़ना। पाशविक से मानवीय प्रेम, फिर मानवीय से भागवत प्रेम की ओर। वासना से प्रार्थना की तरफ।

प्रश्न- ध्यान करने से यदि क्रोध खत्म हो गया तो इस दुनिया में हमारा काम कैसे चलेगा?

आश्चर्य तो यही है कि अभी क्रोधसहित कैसे चल रहा है! क्रोध नहीं रहेगा तो बड़ी सुन्दरता से चलेगा, यह बात बिल्कुल पक्की है। मुश्किल तो अभी है कि काम कैसे चल रहा है।

मैंने सुना है एक सीधी-सादी अनपढ़ स्त्री पोस्ट ऑफिस में पहुँचकर बोली कि मेरा शराबी और क्रोधी पति तीन दिन से लापता है। लगता है उनका अपहरण हो गया। कृपया रिपोर्ट लिख लीजिए। पोस्ट मास्टर ने कहा कि बहन जी, यह पुलिस थाना नहीं है, पोस्ट ऑफिस है। पुलिस थाना

सामने है, वहां जाओ। महिला बोली– क्या करूं पोस्ट मास्टर साहब, जब से वह क्रोधी, शराबी, झगड़ालू पति लापता हुआ है, खुशी के मारे मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि कहाँ जाऊँ, कहाँ न जाऊँ!

पोस्ट मास्टर ने कहा अब तो पता चल गया न... जाओ, वह सामने है पुलिस थाना। स्त्री बोली– नहीं, वहां मैं नहीं जाऊंगी। दो साल पहले भी ऐसा ही हुआ था, मैं गलती से वहां चली गई थी। वे नालायक लोग दो दिन में ही मेरे दुष्ट पति को पकड़ लाए थे। आप तो रिपार्ट यहीं लिख लीजिए।

पोस्ट मास्टर ने कहा कि हद हो गई जब पकड़वाना ही नहीं है पति को, ढूंढना ही नहीं है; तो रिपोर्ट भी किसलिए लिखवा रही हो? स्त्री बोली– भीतर अपराध–बोध लगता है– गिल्ट कान्शेसनैस, कि पति गुम गया है और रिपोर्ट तक नहीं लिखवाई। आप तो लिख लो। साहब, मेरे जाते ही तुरंत फाड़कर फैंक देना। कम से कम हमको तसल्ली रहेगी, मौहल्ले वालों से कह सकेंगे कि रिपोर्ट तो लिखवाई थी।

तुम कह रहे हो कि क्रोध अगर खत्म हो गया तो दुनिया में काम कैसे चलेगा? आश्चर्य यही है कि अभी कैसे चल रहा है। दुनिया में इतने लोग क्रोध कर रहे हैं। इतने आतंकवादी, इतने युद्धखोर, इतने उपद्रवी लोग... मुसीबत तो अभी है। पिछली सदी में प्रथम विश्व युद्ध हुआ करोड़ों लोग मारे गए। फिर द्वितीय विश्व युद्ध हुआ उससे भी अधिक लोग मारे गए। अब थर्ड वर्ल्ड वार की तैयारी चल रही है जिसमें सारी दुनिया समाप्त हो जाएगी। इस क्रोध के चलते यह दुनिया नहीं चल पाएगी। और तुम पूछ रहे हो कि क्रोध नहीं होगा तो दुनिया कैसे चल पाएगी? बड़े सुन्दर तरीके से चलेगी। धरती स्वर्ग बन जाएगी।

अजीब सवाल पूछ रहे हो.... तुम ध्यान करके देखो तो। तुम कह रहे हो अगर ध्यान करने से... 'अगर–मगर' से शुरू न करो सवाल। ध्यान करके देखो। इन्हीं सज्जन ने आगे एक और सवाल पूछा है–

प्रश्न- परिवार, समाज, परिचित रिश्तेदारों से बातचीत करने में मैं हकलाता हूँ? अजनबियों के बीच नहीं हकलाता धड़ल्ले से बोलता हूँ। ऐसा क्यों?

जरूर तुम जैसा क्रोधी आदमी और भी अन्य दुर्गुणों से सम्पन्न होगा। तुम झूठ भी बोलते होओगे। हो सकता है चोरी-बेईमानी भी करते होओगे। जो आदमी झूठ बोलता है, वह डरता है। भीतर-भीतर भयभीत रहता है कि कहीं उसका झूठ पकड़ा न जाए। और इसलिए बोलने में वह हकलाने लगता है। क्योंकि उसको भीतर से भय बना है। कहना कुछ चाह रहा है। ऊपर से कुछ और कह रहा है। भय लगता है कि कहीं असली बात न निकल जाए। तो रुक जाता है बीच में, अटक जाता है। अधिकांश लोग जो बोलने में अटकते हैं, उसका कारण सदा भय होता है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन नाम का एक अद्‌भत आदमी हुआ। घर में था, किसी का फोन सुन रहा था। फोन जैसे ही उसने रखा, अपनी पत्नी से बोला कि ऐसा करो ड्राइंग रूम में जितना भी कीमती सामान रखा है, फटाफट उठाओ, और भीतर छुपा लो। पत्नी ने पूछा कि क्यों, क्या हुआ? उसने कहा कि मेरे तीन-चार दोस्त मिलने के लिए आ रहे हैं। पत्नी बोली- तुम्हारे दोस्त क्या चोर हैं जो सामान छुपा कर रख लूँ। उसने कहा कि नहीं, वे लोग तो चोर नहीं हैं, बड़े सज्जन पुरुष हैं, लेकिन वे अपना-अपना सामान पहचान जाएँगे।

जब भी तुम्हें कुछ छिपाना पड़े तो भली-भांति जानना कि चोरी का काम है। हकलाने वाला आदमी कुछ छुपाने की कोशिश में है। वह डरा हुआ है कि पकड़ा न जाए। कोई भेद की बात खुल न जाए।

तुम पूछ रहे हो कि परिवार, समाज, रिश्तेदारों व परिचितों से बातचीत करने में मैं हकलाता हूँ। अजनबियों के बीच धड़ल्ले से बातचीत करता हूँ। क्योंकि अजनबियों से तुमने कुछ छिपाया नहीं। जो तुम्हारे परिचित हैं और

रिश्तेदार हैं, वहाँ तुम झूठ बोले हो, वहाँ तुमने कुछ छिपाया है। वहाँ डर है। ट्रेन में सफर कर रहे हो, अजनबी लोग हैं। वहाँ तुम्हें कोई भय नहीं। इनसे तो पहले कभी मिले नहीं, झूठ बोले नहीं। अगर बोलोगे तो अभी नया झूठ ही होगा। इसमें कुछ पकड़ने की संभावना नहीं। शायद इन लोगों से दोबारा तुम्हारी मुलाकात होने वाली नहीं। इसलिए तुम्हारा वहाँ कोई भय नहीं है।

तुम्हारी समस्या पढ़कर एक घटना मुझे याद आई। मुल्ला नसरुद्दीन एक किराने की दुकान पर कुछ सामान खरीदने गया, टोमैटो कैचअप की बोतल खरीदने। दुकानदार का छोटा भाई वहाँ मौजूद था। उसने कीमत बताई बारह रुपये। नसरुद्दीन ने फटाफट बारह रुपये दिए और बोतल लेकर घर आ गया। पत्नी ने कहा कि अरे यह तो सस्ती मिल गई। एक और ले आओ। यह तो एम. आर. पी. रेट से भी कम है। नसरुद्दीन दोबारा गया उसी दुकान पर। इस बीच छोटे भाई की जगह बड़ा भाई बैठा हुआ था। नसरुद्दीन ने कहा कैचअप की एक बोतल दें। उसने कहा बारह रुपये पचानवे पैसे। मुल्ला ने कहा हद हो गई। पचानवे पैसे ज्यादा...। इतनी जल्दी रेट बढ़ गए। अभी पांच मिनट पहले तो लेकर गया था मैं। उसने कहा कि मेरा छोटा भाई हकला है। इसके पहले की वह पचानवे पैसे कह पाए। तुम बारह रुपये देकर चले ही गए। उस बेचारे को बोलने में देर लगती है बारह रुपये और पचानवे पैसे।

प्रश्न- ध्यान लगाने का सबसे सरल तरीका बताएं?

सबसे सरल तरीका ओशो के द्वारा बताया गया सक्रिय ध्यान है। अभी यहां विस्तार से तो चर्चा नहीं हो सकेगी। पर आप साधना के लिए आमंत्रित हैं। यहाँ हांसी में हमारा ध्यान केन्द्र है। निकट ही हिसार में भी एक ध्यान केन्द्र है। आप आएं, स्वागत है, सीखें। दो-चार दिन केन्द्र में आकर कुछ मित्रों के संग-साथ करें, उसके बाद फिर आप अपने घर में अकेले कर सकेंगे। सक्रिय ध्यान या डायनमिक मैडिटेशन की विधि आधुनिक युग के लिए ओशो की महान भेंट है।

प्रश्न- चाह, वासना कब और कैसे खत्म होगी?

अगर तुमने खत्म करना चाहा तो कभी न होगी। क्योंकि यह खत्म करने की चाहत भी तो एक चाह है। निर्वासना होने की वासना भी तो एक वासना है। तुम तो वासना को और पुष्ट कर रहे हो। पुरानी वासनाएं तो जहाँ के तहाँ हैं। एक और नई कामना खड़ी हो गई कि मैं वासना से कैसे मुक्त हो जाऊँ। पुरानी चाहतें जहाँ के तहाँ मौजूद हैं। एक और नई चाहत जन्मी कि मेरे भीतर से चाह मिट जाए। इस तरह चाह कम न हुई, वरन बढ़ोतरी हो गई चाह में।

कामना और वासना को खत्म करने का उपाय यह नहीं है। चाह का मूल कारण है हमारी मूर्च्छा की अवस्था। जागरण को साधना होगा। ध्यान को साधना होगा। ध्यान यानि अति जागरुकता– सुपर कान्शेसनैस। अपनी वासना का अवलोकन करना होगा। अपनी चाहतों को, तमन्नाओं को, कामनाओं को गौर से देखना होगा। अगर तुमने पहले से ही तय कर लिया है कि इनसे मुक्ति चाहिए, तब तुम उनका निरीक्षण न कर पाओगे। क्योंकि तुम पहले से पक्षपाती हो गए। तुमने पहले से ही तय कर लिया कि ये खराब हैं और इससे छुटकारा चाहिए। दुश्मन का तुम अवलोकन न कर सकोगे। शुद्ध निष्पक्ष भाव से, बिना निर्णय के अवलोकन करने की क्षमता का नाम ध्यान है। तुम्हारे भीतर जो भी घट रहा है, उसे होशपूर्वक देखो। उस देखने से रूपांतरण घटित होता है। जैसे किसी पौधे की जड़ों को तुम उखाड़कर देखो तो वह पौधा कुम्हलाकर सूख जाएगा। पौधे की जड़ें केवल अंधेरी भूमि में ही पनप सकती हैं। उजाले में लाने पर जड़ें नष्ट हो जाती हैं और पौधा खत्म हो जाता है।

ठीक ऐसे ही हमारे भीतर जो वासना है, क्रोध है, लोभ है, अहंकार है; वह केवल अचेतन में पनपता है। उसके प्रति चैतन्य होने से, उसका निरीक्षण करने से, उसे प्रकाश में लाने से वह नष्ट होने लगता है। लेकिन पहले से यह तय करके नहीं जाओ कि इसे नष्ट करना है। क्योंकि तब तुम

उसे देख ही न पाओगे। क्योंकि जिस चीज को तुम नष्ट करना चाहते हो, तुम उससे डर जाते हो। और जब डर गये तो तुम उसका साक्षात्कार नहीं कर सकते। तुम दुश्मन से बचना चाहते हो। उसके आमने-सामने तुम आ नहीं सकते। इसलिए वासना से दुश्मनी न साधो। क्रोध से, अहंकार से, लोभ से, ईर्ष्या से, द्वेष से छुटकारा पाने की न सोचो। गौर से देखो। देखने मात्र की प्रक्रिया में ही वे समाप्त हो जाते हैं। ध्यान का दीप जलाकर अंतस में अंधकार का दर्शन करने से अंधकार विलीन हो जाता है।

प्रश्न- प्रभु को पाने के लिए मैं अपना सर्वस्व लुटाने को तैयार हूँ। एक मित्र ने मुझे योग साधना सम्बन्धी किताब गिफ्ट में दी है। उसे पढ़कर तीन दिन ध्यान लगाने की कोशिश की। किन्तु मेरा ध्यान वगैरह कुछ भी नहीं लगा। क्या ईश्वर मुझसे नाराज है?

वाह! देखते हो कैसा गजब ढा रहे हैं!! ये सज्जन कह रहे हैं कि ईश्वर को पाने के लिए सर्वस्व लुटाने को तैयार हूँ। शुरुआत ही गलत हो गई। तुम्हें ईश्वर के बारे में पता कहाँ से चला? ईश्वर है कि नहीं कैसे मालूम हुआ? यह सब उधार ज्ञान है। यह तो सुनी-सुनाई बातें हैं। संयोग की बात है कि तुम भारत के एक आस्तिक परिवार में पैदा हुए। अगर तुम रूस में या चीन में पैदा होते, जहाँ नास्तिकता का माहौल है; वहाँ तुम्हारे मन में कभी यह सवाल पैदा न होता। और तुम्हारे अगले प्रश्न से पता चल जाता है कि तुम कितना लुटाने को तैयार हो। कह रहे हो कि एक मित्र ने मुझे योग साधना सम्बन्धी किताब गिफ्ट में दी। वह भी तुमने खरीदी नहीं। ईश्वर को पाने के लिए सर्वस्व लुटाने को तैयार हो। वह पुस्तक भी तुम्हें मुफ्त उपहार स्वरूप मिली। उसको तुमने पढ़ा। यद्यपि तुमने लिखा नहीं कितना...! लेकिन मैं अंदाज लगा सकता हूँ कि तुमने दो-चार पेज पढ़े होंगे। पूरी पढ़ी भी नहीं होगी। गिफ्ट में मिली किताब कोई नहीं पढ़ता।

खुद खरीदते, तभी तुम पढ़ते।

आगे तुम कहते हो कि उसे पढ़कर तीन दिन मैंने ध्यान लगाने की कोशिश की मगर ध्यान-व्यान कुछ लगा नहीं। तीन दिन कोशिश! तुमने बड़ा उपकार किया परमात्मा पर। तीन दिन में तुम चाहते क्या हो? अभी-अभी कह रहे थे सर्वस्व लुटाने को तैयार हो और तीन दिन में हार मान गए। जरा देखो तो तुम क्या कीमत चुकाने को तैयार हो। गिफ्ट की किताब... वह भी पूरी पढ़ी नहीं... तीन दिन ध्यान लगाने की कोशिश की... तुमने लिखा नहीं है कि कितने मिनट? हो सकता है कि तीन-चार मिनट प्रतिदिन कोशिश की हो। तुम्हारा प्रश्न पढ़कर लगता नहीं कि तुम कोई काम पूर्णता से कर सकते हो और कहते हो कि क्या ईश्वर मुझसे नाराज है? होगा ही। ऐसे आधे-अधूरे काम करने वाले से कौन प्रसन्न होगा।

एक दिन हाथ के नीचे बगल में छाता दबाए नसरुद्दीन बाजार में जा रहा था। आंधी-तूफान आया। तेज बारिश होने लगी। सभी लोगों ने अपने-अपने छाते खोल लिए थे। नसरुद्दीन बगल में छाता दबाए चला जा रहा था। किसी आदमी ने कहा कि भले मानुष, छाता खोलते क्यों नहीं? नसरुद्दीन ने कहा कि अरे, यह छाता बिल्कुल बेकार है। इसकी डंडी टूटी हुई है। खुलता भी नहीं है। जगह-जगह छेद हैं, चूहों ने काट दिया है। छेद ही छेद हैं इसमें। किसी काम का नहीं है। जंग लग चुकी है, खुलता भी नहीं है। उस आदमी ने पूछा कि जब किसी काम का नहीं है तो इसे लाए क्यों? नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे क्या पता था कि बरसात होने ही लगेगी।

ऐसे आधे-अधूरे काम... छाता लाए, किसी काम का भी नहीं है। भरोसा भी नहीं है कि बरसात होगी। बस ऐसे ही दूसरों को दिखाने के लिए ढो रहे? काहे के लिए लाए? तुमको ऐसे ही गिफ्ट की किताब मिल गई। ऐसा ही फटा छाता... छेद ही छेद हैं उसमें। तुमने तीन दिन तीन-तीन मिनट ध्यान किया और परमात्मा मिला नहीं। बात खत्म! और अपना सर्वस्व लुटाने को

तैयार हो प्रभु को पाने के लिए। जरा सोचो तुम क्या कह रहे हो? थोड़े ईमानदार बनो। ऐसे बात नहीं बनेगी। प्रामाणिकता चाहिए, लगन और प्रतीक्षाभाव चाहिए। संकल्प, समर्पण, समझ और अनंत धैर्य चाहिए। तो ही साधना संभव है।

प्रश्न- क्या हम अपनी इच्छा से जब चाहे तब प्राण त्याग कर सकते हैं?

जरूर। क्या आपने पोटैशियम साइनाइड का नाम नहीं सुना? अगर के.सी.एन. खरीदने में खर्च करने से बचना चाहते हो, मुफ्त मृत्यु चाहिए तो किसी आतंकवादी को पत्र लिखकर विनती करो कि भैया, हमने क्या बिगाड़ा है, हम पर भी कृपा करो।

एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन कह रहा था- आत्महत्या के अनेक उपाय हैं- जहर, नींद की गोलियां, नदी में छलांग, ऊंची बिल्डिंग से कूदना, रस्सी का फंदा, बिजली का करेंट, रेल की पटरी, चाकू, पिस्तौल, आंख बंद करके हाई-वे क्रास करना, आग में जलना; मगर अधिकतम लोग इन सभी विकल्पों की तुलना में एक कानूनी, समाज-स्वीकृत, धीमे मगर सुनिश्चित तरीके का प्रयोग करना ज्यादा पसंद करते हैं, जिसका नाम है- 'शादी'।

प्रश्न- योग के सम्बन्ध में ओशो की क्या दृष्टि है?

योग के सम्बन्ध में ओशो की दृष्टि बड़ी सरल और साफ है। ध्यान अथवा योग का अर्थ है साक्षी भाव। अभी मैं कह रहा था कि अपने भीतर उठ रही वासना को, क्रोध को होशपूर्वक देखो। इस देखने की प्रक्रिया में एक नये बिन्दु का उदय होता है। वह जो देखने वाला है- द्रष्टा, साक्षी। एक तो हो गया सामने दृश्य। मैं देखता हूँ कि मेरे अंदर क्रोध की लहर उठी, कि लोभ जन्मा या कामना उठी। और एक दूसरा बिन्दु पैदा हुआ इसका द्रष्टा। मैं सब देखने वाला हूं। इस द्रष्टा भाव, साक्षी भाव में डूबना ध्यान है। धीरे-धीरे दृश्य तो विदा हो जाएगा, शून्य हो जाएगा। केवल द्रष्टा मात्र रह जाएगा। इस

दृष्टा भाव का नाम ध्यान है। इसको पाने की विधि का नाम ही योग है। मैं कोई कठिन परिभाषा आपको नहीं बता रहा हूँ। बिल्कुल साधारण सी बात आपको कह रहा हूँ। ओशो की दृष्टि बड़ी साफ-सुथरी एवं सरल है।

सात प्रकार के योग सम्भव हैं। कोई व्यक्ति अपने कर्मों का साक्षी बने, उसका नाम कर्मयोग। कोई अपनी इन्द्रियों की संवेदनशीलता के प्रति जागे, भोग में योग को साधे, उसका नाम तंत्र। कोई व्यक्ति श्वासों का साक्षी बने, उसका नाम हठ योग। कोई अपनी भावनाओं का साक्षी बने, उसका नाम भक्ति। कोई विचारों का द्रष्टा बने, वह ज्ञान योग। कोई इन पांचों का सम्मिलित रूप से द्रष्टा बने, बिना चुनाव किए, च्वाइसलैस अवेरनेस में जीए, उसका नाम राजयोग। और जो बिना किसी विधि के सीधा ही साक्षी हो जाए, उसे कहते हैं- सांख्य योग। ये सात प्रकार के योग मार्ग हैं। इन सबसे गुजरकर साधना करते-करते एक दिन आठवीं अवस्था प्राप्त होती है सहज योग की। जब द्रष्टा भाव को साधना नहीं पड़ता। द्रष्टा भाव सहज रूप से सधा ही रहता है। कबीर साहब कहते हैं-

'साधो सहज समाधि भली।'

वह सबसे भली, सर्वश्रेष्ठ अवस्था है। ये सात बातें हमें साधनी होंगी। आठवीं सहज समाधि इसका परिणाम होगी।

प्रश्न- ओशो की देशना सब लोग समझ क्यों नहीं पाते?

मुझे तो शक है आप भी समझ पाए या नहीं! वर्ना यह बात भी समझ जाते कि सब लोग क्यों नहीं समझ पाते? आप दूसरे क्षेत्रों में इस प्रकार के सवाल क्यों नहीं पूछते? दो मिनट के लिए ओशो की देशना को भूल जाइए। मैं दूसरे प्रश्न आपके सामने रखता हूँ। आइन्सटीन की रिलेटिविटी का प्रिंसीपल सारे लोग क्यों नहीं समझ पाते? ई इक्वल टू एम सी स्कवायर- इस फार्मूला को दुनिया के सब लोग क्यों नहीं समझ पाते। रविन्द्रनाथ टैगोर की गीतांजलि को सब लोग क्यों नहीं समझ पाते। कभी पढ़ी है? आप

तारीफ जरूर करते होंगे कि नोबल पुरस्कार मिला है इस देश के महाकवि को। जरा पढ़कर देखो। चार पेज से आगे न पढ़ पाओगे। कुछ समझ में न आएगा। आप क्यों नहीं कहते कि पिकासो या फिदा हुसैन की पैन्टिंग सब लोग क्यों नहीं समझ पाते? आपने देखी है फिदा हुसैन की पैन्टिंग जो अभी दो करोड़ में बिकी थी? आप उसे दो हजार रुपये में भी खरीदने को तैयार नहीं होंगे। क्योंकि आपकी समझ के ऊपर से निकल जाएगी। अन्य चीजों के बारे में यही सवाल क्यों नहीं उठाते।

ओशो की बात भी वही समझ पाएंगे जो विकसित हुए हैं अध्यात्म के क्षेत्र में। जो व्यक्ति गणित और फिजिक्स या हायर मैथेमैटिक्स पढ़ेगा, उसको ही आइन्स्टीन की बात समझ आएगी। आप कहेंगे कि हद हो गई के. जी. स्कूल के बच्चे क्यों नहीं समझ पाते? के. जी. स्कूल के बच्चे नहीं समझ पाएंगे। फिजिक्स में एम. एस. सी., पी. एच. डी. करने वाले सब लोग भी नहीं समझ पाएंगे। आइन्स्टीन ने स्वयं लिखा है कि मेरी बात को समझने वाले इस समय दुनिया में ज्यादा से ज्यादा एक दर्जन लोग हैं, बस। आप पढ़ो सापेक्षिकतावाद का सिद्धान्त, आप का सिर चक्कर खाने लगेगा। हम सब लोग साधारण जगत की बात भी नहीं समझ पाते। शास्त्रीय संगीत कितने लोग समझते हैं? कितने लोगों को रस है शास्त्रीय संगीत में। हां, आम जनता फिल्मी म्युजिक समझती है। आम जनता औसत बुद्धि की बातें समझती है। कोई भी उच्चत्तर बात उसकी समझ में नहीं आती। तो धर्म की श्रेष्ठतम बात कैसे समझ में आएगी?

इस सम्बन्ध में एक चुटकुला आपसे कहना चाहूँगा। कल किसी ने मुझे एस. एम. एस. किया था। लालू प्रसाद यादव हवाई जहाज में यात्रा कर रहे थे। ऐयर होस्टस ने आकर पूछा कि सर आर यू वैजिटेरियन? उनको अंग्रेजी समझ में नहीं आई। परिचारिका ने हिन्दी में पूछा कि आप वैजिटेरियन हैं या नॉन वैजिटेरियन। लालू प्रसाद ने कहा कि अरे यह क्या होता है, मैं तो इंडियन हूँ इंडियन। ऐयर होस्टस ने पुनः पूछा कि आप शाकाहारी हैं या

मांसाहारी? लालू प्रसाद ने कहा कि अरे बिहारी हूँ बिहारी।

हमें साधारण-साधारण बातें समझ नहीं आतीं। मत पूछो कि ओशो की देशना सबको समझ में क्यों नहीं आती। बुद्ध और महावीर की बात कितने लोगों को समझ में आई और राम व कृष्ण की बात कितने लोगों को समझ में आई? याद रखना कृष्ण का एक भी शिष्य नहीं हुआ। अगर लोगों को बात समझ में आती तो कुछ तो शिष्य हो जाते। एक भी शिष्य न हुआ। याद रखना अर्जुन उनका शिष्य नहीं था। वह तो बेचारा मुसीबत में फंस गया था और कृष्ण उसको उपदेश देने लगे। जबरदस्ती गुरु बन बैठे। उसने कुछ पूछा नहीं था। वह तो घबड़ा गया था, धनुष-वाण उसने नीचे रख दिए थे। हाथ-पैर उसके कंपने लगे थे, यह दृश्य देखते ही कि अपने ही लोगों को मारना होगा। इस तरफ भी अपने ही लोग हैं। उस तरफ भी अपने ही रिश्तेदार हैं। इनका खून-खराबा करना होगा। यह देखकर उसको डिप्रेशन का दौरा आ गया। कृष्ण उसको उपदेश देने लगे। उस बेचारे ने कुछ पूछा न था। वह कोई शिष्य नहीं था। इसलिए वह हर जवाब में से नए सवाल उठाता गया, पूछता ही गया। अठारह अध्याय लम्बी प्रवचन माला चली। उसकी समझ में कुछ नहीं आया। उसने सोचा कि इनसे सिर लड़ाने की बजाय कौरवों से लड़ लो। अरे कब तक बकवास चलेगी? कब तक? खत्म ही नहीं हो रही गीता। वह सवाल पर सवाल पूछे जा रहा है। कृष्ण तर्क पर तर्क दिए जा रहें। उसने कभी शिष्यत्व नहीं स्वीकारा। कृष्ण को उसने अपना मित्र समझा था। कृष्ण को उसने सारथी बनाकर बिठाया था। अगर कृष्ण को वह गुरु समझता तो कम से कम सारथी के पद पर तो न बिठाता। सारथी यानि पुराने जमाने का ड्राइवर। कृष्ण घोड़ों की देखभाल करते, दाना-पानी देते होंगे। घोड़ों को नहलाते होंगे लीद साफ करते होंगे... सारथी का काम करते होंगे। अर्जुन ने उनको ड्राइवर की पोस्ट पर रखा था, गुरु नहीं माना था।

फिर महाभारत में आगे कहानी आती है कि जब पाण्डवों की मृत्यु होती है तब केवल युधिष्ठिर और उनका कुत्ता स्वर्ग में प्रवेश पाते हैं। बाकी सारे

पाण्डव स्वगारोहण करते हुए रास्ते में गल जाते हैं। अर्जुन को भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता। स्पष्ट है कि कृष्ण की देशना अर्जुन के किसी काम नहीं आई। अर्जुन ने कुछ नहीं सीखा। अगर सीखा होता तो मोक्ष प्राप्त होता। युधिष्ठर के कुत्ते को मुक्ति मिल गई मगर अर्जुन को नहीं मिली। भगवान कृष्ण की गीता काम नहीं आई।

अभी एक सज्जन ने पूछा था कि हम गुरु ग्रन्थ साहिब का रोज पाठ करते हैं किंतु घर में शान्ति क्यों नहीं रहती? कोई कहता है रोज गीता पाठ करते हैं मन में शान्ति क्यों नहीं होती? जब कृष्ण भगवान मौजूद थे तब शान्ति न हो पाई, महाभारत का भीषण नर-संहार हुआ। तुम भी गजब कर रहे हो, गीता पढ़कर घर में शान्ति लाने की कोशिश कर रहे हो। गुरु ग्रन्थ साहिब लिखने वाले गुरुओं को तलवारें चलानी पड़ीं, युद्ध लड़ना पड़ा। उनके जीवन-काल में शान्ति स्थापित न हो पाई। उनका ग्रन्थ पढ़कर तुमको शान्ति कैसे मिल जाएगी?

जरा सोचो तो सही। कैसे अन्धेपन की बात कर रहे हो!

यदा-कदा समझने वाले पैदा होते हैं। भीड़ नासमझों की है। वे हर अर्थपूर्ण बात का अनर्थ कर देते हैं। कृष्ण ने, सिक्ख गुरुओं ने, ओशो ने जो कहा है वह भीड़ की समझ नहीं आ सका, नहीं आ सकेगा। ऐसी वस्तुस्थिति है। तथ्य ऐसा है- तथाता!

प्रश्न- ध्यान मंजिल है अथवा यात्रा?

दोनों बातें। शुरूआत में यात्रा, अंत में मंजिल भी। मार्ग ही बढ़ते-बढ़ते मंजिल हो जाता है। रास्ता ही बढ़ते-बढ़ते मंदिर हो जाता है। तुम चलो। चलते-चलते-चलते एक दिन मुकाम पर पहुँच जाओगे। मार्ग और मंजिल अलग-अलग नहीं होते बल्कि मार्ग का ही एक्सटैंशन-अन्तिम बिंदु मंजिल है।

प्रश्न- हमको आवागमन के चक्कर में पड़ने से दयालु प्रभु ने रोका क्यों नहीं? समझाइए।

यह हमारी भ्रांत धारणा है कि अगर प्रभु दयालु है तो उसे रोकना चाहिए था। नहीं, यह धारणा गलत है। हम अपने सुख-दु:ख के निर्माता स्वयं हैं और अस्तित्व इसमें कहीं हस्तक्षेप नहीं करता। यही उसकी दया है। परमात्मा करुणावान है इसलिए हमारी स्वतंत्रता का सम्मान करता है। अगर हम गढ्ढे में गिरेंगे तो वह हमें रोकेगा नहीं। गिरने देगा। क्योंकि गिरने से ही हम सबक सीखेंगे। भूल-चूक से ही विवेक का उदय होगा, बुद्धि का विकास होगा। अगर कोई बीच में आकर हस्तक्षेप करे, रोके-टोके, तो हमारी चेतना का विकास नहीं हो सकता। इसलिए आप शक उठा रहे हैं कि परमात्मा दयालु है कि नहीं? उसने आवागमन के चक्कर में पड़ने से रोका क्यों नहीं? इसलिए नहीं रोका क्योंकि हम स्वतंत्र हैं चक्कर में पड़ने के लिए, घनचक्कर बनने के लिए। ताकि हम चेत सकें; जाग सकें। हमारे भीतर प्रज्ञा का विकास हो सके।

मैंने सुना है मुल्ला और उसकी पत्नी पार्क में शाम को एक बैंच पर बैठे हुए थे। पेड़ों के पीछे एक युवक और एक युवती, प्रेमी-प्रेमिका छुपे हुए हैं। उन्हें पता नहीं है कि नसरुद्दीन और गुलजान यहाँ बैंच पर बैठे हुए हैं। वे आपस में गपशप कर रहे हैं। प्रेमालाप चल रहा है। धीरे-धीरे बात बढ़ती ही जा रही है। लड़की शादी के लिए कह रही है। और लग रहा है कि लड़का अब तैयार हुआ कि तब तैयार हुआ। हाँ कहने ही वाला है। तब नसरुद्दीन की पत्नी ने कहा कि सुनो जी, जरा खांसो-खकारो। बीच में कुछ रोको। वे लोग तो शादी की बात तय करने जा रहे हैं। और ये लड़की मुझे अच्छी नहीं लग रही, सद्‌चरित्र प्रतीत नहीं होती इसकी बातों से। यूँ पेड़ों के पीछे छुपकर प्रेमी से मिलना, उसे विवाह हेतु फुसलाना, ये कोई सज्जनता के लक्षण नहीं हैं। यह कोई अच्छे घर की लड़की नहीं है। रोको-टोको, मना करो। ज़रा खांसो-खकारो। जब उनको पता चलेगा कि हम यहाँ बैठे हैं तो उनकी बातचीत बंद होगी। नहीं तो उनकी शादी का फैसला होने वाला है। नसरुद्दीन ने कहा कि भाड़ में जाए वह नालायक लड़का। जब मैंने शादी की थी तब

कौन खांसा-खकारा था? मरने दो साले को, अपने-आप अक्ल आएगी।

तुम पूछ रहे हो आवागमन के चक्कर से दयालु प्रभु ने रोका क्यों नहीं? इसलिए नहीं रोका कि पड़ने दो आवागमन के चक्कर में। अपने आप बच्चू की अक्ल ठिकाने आएगी।

प्रश्न- सैल्फ रियलाइजेशन या आत्म ज्ञान क्या है?

सैल्फ रियलाइजेशन का अर्थ है इस बात को रियलाइज करना कि सैल्फ जैसी कोई चीज नहीं है। देयर इज नथिंग लाइक सैल्फ। जिसे मैं स्वयं का होना कह रहा हूँ, वह केवल एक भ्रम है। 'मैं' जैसा कुछ भी नहीं है। इस बात का ज्ञान होने को हम चाहें तो कह सकते हैं आत्म ज्ञान। यद्यपि यह शब्द गलत है। सेल्फ रियलाइजेशन इज ए रोंग टर्म। इट गिव्स ए रोंग कनोटेशन दैट देअर इज समथिंग लाइक 'सैल्फ' विच यू हैव रियलाइज्ड। इन फैक्ट देअर इज नो-सैल्फ। टू रिलाइज नो-सैल्फनैस, शून्यता, नथिंगनैस इज काल्ड सैल्फ रियलाइजेशन। इट इज ए सैल्फ कन्ट्राडिक्टरी वर्ड।

लेकिन मजबूरी है, क्या कहें? कुछ न कुछ तो कहना होगा। भीतर एक शून्यता है। वहाँ स्वयं के होने जैसा कुछ भी नहीं है। यह हमारी भ्रांति है कि हम हैं। भीतर जब ध्यानपूर्वक खोजेंगे तो आप स्वयं को नहीं पाएँगे। उस अवस्था को ही यथार्थ-बोध कह सकते हैं। यद्यपि यह शब्द बड़ा भ्रामक व गलत है। लेकिन क्या करें? कुछ तो नामकरण करना ही होगा। हम जो कुछ भी कहेंगे वह गलत होगा, अनाम का नाम रखना असंभव है। निर्विचार दशा में जिसे जाना जाता है उसे विचार में, भाषा में प्रगट करना नामुमकिन है।

प्रश्न- ध्यान के विषय में विस्तार से समझाने की कृपा करें?

ध्यान का अर्थ है भीतर की उस शून्यता को जानना। अब शून्यता को विस्तार में कैसे कहूँ? शून्य बस शून्य ही होता है। जापान में एक अद्‌भुत झेन फकीर हुआ लिंची। एक दिन समुद्र के रेतीले तट पर बैठा हुआ था। किसी दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर ने आकर उससे यही सवाल पूछा- 'ध्यान क्या है?'

लिंची ने उंगली से रेत के तट पर लिख दिया ध्यान, मैडिटेशन। प्रोफेसर ने कहा– इतने संक्षेप में नहीं, थोड़ा और डिटेल में बताएं। लिंची ने बड़े–बड़े अक्षरों में लिख दिया ध्यान। मैडिटेशन। उसने कहा कि यह तो वही की वही बात हो गई। अक्षर बड़े करने से क्या होगा? विस्तार से बताएं। लिंची ने कहा– बड़ी मजबूरी है शून्यता के बारे में जो कुछ भी कहूँ वह शून्यता नहीं होगी। उसे जाना तो जा सकता है। बताया नहीं जा सकता। शब्दों में नहीं कहा जा सकता।

मैंने सुना है एक बायोलॉजी की टीचर बच्चों से पूछ रही थी– हवा में उड़ने वाले किसी पक्षी का नाम बताओ। एविज वर्ग के प्राणी का नाम लो। नसरुद्दीन के बेटे फजलू ने उठकर कहा कि मैडम मैं बताता हूँ– कोयल। टीचर ने कहा बहुत सुन्दर। ठीक जवाब दिया। चार और उड़ने वाले पक्षियों के नाम बताओ। फजलू ने कहा कि कोयल की मम्मी, कोयल की बहन, कोयल की पड़ोसन और कोयल की दुश्मन।

चलो... कोयल के तो फिर भी रिश्तेदार होते हैं, ध्यान का कोई रिश्तेदार तक नहीं है। मैं नहीं कह सकता कि ध्यान के बड़े भाई, चाचाजी, मामाजी और ध्यान के पिताजी। ध्यान बस ध्यान ही है। शून्य बस शून्य ही है। तुम जान तो सकते हो, बता नहीं सकते। पूछो मत। अनुभव के लिए आओ। तुम्हें आमंत्रण देता हूँ।

प्रश्न- अहंकार से छूटना चाहता हूँ इसका सहज मार्ग बताएं?

अहंकार अंधकार के समान है। अंधकार के साथ सीधा–सीधा कुछ भी नहीं किया जा सकता। जो कुछ भी करना है प्रकाश के साथ करना होगा। दीपक जलाते ही अंधेरा दूर हो जाता है। मत पूछो अंधेरा मिटाने का उपाय। क्या करोगे? अंधेरे से कुश्ती लड़ोगे, बॉक्सिंग करोगे या जूडो कराटे? तलवार से काटोगे, कि पहलवानों को बुलाकर धक्का मारकर भगाओगे।

नहीं; अधंकार के साथ तुमने कुछ भी किया तो तुम हार जाओगे। अंधेरे के साथ कुछ नहीं किया जा सकता। अहंकार के साथ भी कुछ नहीं किया जा सकता। जो कुछ भी किया जा सकता है वह दीपक के साथ। प्रकाश को जलाने की कला सीखो। ध्यान का दीपक जलाओ। अहंकार पाया ही नहीं जाता। प्रकाश की अनुपस्थिति है अहंकार। उपस्थिति के मौजूद हो जाने पर अनुपस्थिति विलीन हो जाती है। विलीन कहना भी ठीक नहीं, वास्तव में वह थी ही नहीं।

प्रश्न-समर्पण को लोग कमजोरी समझते हैं। मैं समर्पण करूं या न करूं?

लोगों से तुम्हें क्या लेना-देना। लोग क्या समझते हैं, अगर उनके अनुसार जीवन जीओगी तो तुम पागल हो जाओगी। उनकी एक से एक मूढ़तापूर्ण, भिन्न-भिन्न, विचित्र धारणाएं हैं। लोगों की गिनती छः अरब के ऊपर पहुंच गई है। तुम किस-किस के अनुसार जीओगी... बहुमत से जीओगी? डेमोक्रेटिक बनकर जीओगी?

लोगों के मत के अनुसार नहीं, अपने विवेक और अपने भाव के अनुसार जीओ। अगर तुम्हारे भीतर समर्पण का भाव आ गया है, तुम्हारे अन्दर शिष्यत्व की प्यास जागी है, तो अपने अंतर्भाव की सुनो। लोग क्या कहते हैं उनकी चिंता छोड़ो। अगर मीरा ने जन-मानस की फिक्र की होती, अगर बुद्ध ने, महावीर ने लोगों की चिन्ता की होती तो फिर वे मीरा, बुद्ध, महावीर कभी नहीं हो सकते थे। उन्होंने अपने भीतर की आवाज सुनी। अपनी अन्तरात्मा से अपने विवेक से जीना शुरू करो।

प्रश्न- क्या गुरु के प्रति प्रेमभाव भी एक प्रकार का मोह या बंधनकारी नहीं होता?

सब तुम पर निर्भर है। जहर और औषधि अलग-अलग रसायन नहीं होते। राइट डोज में, सही मात्रा में और सही परिस्थिति में देने पर जहर भी औषधि

का काम करता है। विष और अमृत रसायनिक रूप से एक ही होते हैं। उसी की अगर तुमने गलत मात्रा ली या गलत स्थिति में ली, तो वह प्राणघातक है। सही स्थिति में, सही डोज में लेने पर वही जीवन-रक्षक है।

पत्नी के, पिता के, बेटे के, मित्र के प्रेम को तुमने जाना है। वे सब बंधन साबित हुए। संदेह उठना स्वाभाविक है कि अब यह गुरु के प्रति जन्मा प्रेम, श्रद्धा-सम्मान का भाव भी कहीं नया मोह न बन जाए! खतरा तो है, इसलिए मैंने कहा- सब तुम पर निर्भर है। यदि ठीक से उपयोग किया तो यह हथौड़ा ऐसा है जो पुरानी सारी जंजीरों को तोड़ देगा। यद्यपि हथौड़ा और जंजीर एक ही लोहे से निर्मित होते हैं। डी. पी. टी., चेचक, या पोलियो के टीके में उन्हीं बीमारियों के कीटाणु होते हैं। चेचक, डिप्थीरिया या टेटनस के हानिकारक कीटाणु जो बीमारी फैलाते थे और प्रतिवर्ष लाखों के प्राण लेते थे; अब वैक्सीन के रूप में उन्हीं रोगों से रक्षा करने के काम आ रहे हैं। यह उनका सदुपयोग हुआ। चीज वही की वही है। सही ढंग से इस्तेमाल करने पर वही अमृत बन गई। तो गुरु जो सिखा रहा है, जो अनुशासन दे रहा है; वह नया बंधन नहीं, बल्कि तुम्हारे सारे बंधनों को गिराने वाला साबित हो सकता है। गुरु के प्रति श्रद्धा-समर्पण का भाव समस्त मोह-जाल से मुक्ति दिलाने वाला सिद्ध हो सकता है- बशर्ते कि तुमने सम्यक् ढंग से, समझपूर्वक, सजगता से सदुपयोग किया। एक नए कांटे से पुराने सारे कांटे निकाले जा सकते हैं। कोई मूढ़ नए कांटे को शरीर में गड़ाकर रख भी सकता है।

प्रश्न- वह प्रश्न क्या है, जिसका उत्तर मिल जाने के बाद कोई प्रश्न शेष न बचे?

वह प्रश्न है 'मैं कौन हूँ?' इसका उत्तर जिसे मिल गया उसके सारे प्रश्न समाप्त हो जाते हैं। यह आखिरी प्रश्न है। इन्ही मित्र ने एक और सवाल किया है-

प्रश्न- समाधि क्या है?

समाधि यानि समाधान। निष्प्रश्न अवस्था। जिसकी मैं अभी-अभी चर्चा कर रहा था। जब पता लग जाता है कि 'मैं कौन हूँ?' आत्मज्ञान हो जाता है, सारे सवाल गिर जाते हैं, तब उस निष्प्रश्न दशा का नाम समाधि है।

चार छः प्रश्न शेष रह गए हैं। समयाभाव की वजह से उन्हें छोड़ रहा हूँ। जो सवाल बच गए हैं उनके उत्तर मैं टेलीविजन चैनल पर दूँगा। आस्था चैनल पर रोज शाम को 6.50 से 7.10 बजे तक हमारे कार्यक्रम आते हैं। बचे हुए प्रश्नों का उत्तर मैं टी.वी. पर अवश्य दूँगा... यह भी हो सकता है कि प्रतीक्षा करते-करते आप निष्प्रश्न अवस्था पा लें... तब तो असली उत्तर मिल जाएगा।

अब यहां पर माला-दीक्षा होगी। जिन मित्रों के मन में ओशो की देशना के प्रति प्रेम-भाव जागा है, जो ओशो की बात को समझ पा रहे हैं और अब उसे व्यावहारिक रूप से अपने जीवन में अमल करने के लिए राजी हैं; जो श्रद्धा व संकल्पपूर्वक ध्यान में आगे बढ़ने के लिए उत्सुक हैं, उन्हें मैं निमंत्रण देता हूँ माला दीक्षा गृहण करने के लिए।

धन्यवाद।

करुणा की मूर्ति ईश्वर इतना दुखदायी क्यों है?

प्यारे मित्रो, नमस्कार! आज एक ही सज्जन ने तीन सवाल पूछे हैं। तीनों ही आपस में संबंधित हैं।

पहला प्रश्न है : हम कर्म या भाग्य में किसे मानें?

किसी को भी नहीं। कुछ भी मानने की जरूरत नहीं है। जानने-पहचानने की आवश्यकता है। जानो, समझो, असल में दोनों अलग-अलग बातें नहीं हैं। हम कोई कर्म करते हैं, उसका परिणाम आता है यह तो सब जानते हैं। मैं आग में हाथ डालूँगा मेरा हाथ जलेगा। कर्म का फल आएगा। इसे तो कोई सिद्ध करने की जरूरत नहीं। भाग्य हम कहते हैं सामूहिक कर्म के परिणाम को, क्योंकि इस दुनिया में अकेला मैं ही तो नहीं हूँ और भी लाखों लोग हैं। व्यक्तियों के अलावा और विराट जगत है, पशु-पक्षी हैं, प्रकृति के खेल हैं। उसमें

बहुत सी गतिविधियाँ चल रही हैं, बहुत कर्म हो रहे हैं। उन सबके कर्मों का जो सामूहिक परिणाम है उसका नाम भाग्य है।

अतः कर्म के सिद्धांत में और भाग्य के सिद्धांत में, मैं कोई दुश्मनी नहीं देखता। दोनों एक-दूसरे के विपरीत नही हैं।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन जा रहा था बाजार सब्जी खरीदने के लिए, मस्जिद के पास से गुज़र रहा था। मस्जिद का जो मौलवी था वह मस्जिद की मीनार के ऊपर चढ़ा था अजान देने के लिए। जब नसरुद्दीन वहाँ से गुज़र रहा था, ठीक उसी समय, मौलवी ऊपर से गिरा। नसरुद्दीन के ऊपर आकर टपका। मौलवी का तो कुछ न हुआ, नसरुद्दीन की पैर की हड्डी टूट गई।

नसरुद्दीन अस्पताल में भरती हुआ। लोग मिलने के लिए आए, पूछने के लिए, कैसे हो मुल्ला? यह सब कैसे हुआ? ज्यादा तकलीफ तो नहीं हो रही?

नसरुद्दीन ने कहा कि तकलीफ बहुत ज्यादा हो रही है। हड्डी का दर्द तो डॉक्टर की दवा और पलस्तर बंधने से ठीक हो गया। मगर हड्डी टूटने से अधिक कष्ट मेरी धारणा टूटने से हो रहा है। मैं अब तक मानता था कि अपने-अपने किए का फल सबको भोगना पड़ता है। लेकिन यह सिद्धांत गलत निकला। कर्म किसी और ने किया परिणाम हमको भुगतना पड़ा। न हम मस्जिद गए थे, न हम अजान देने चढ़े थे मीनार पर। हम तो अपनी बीवी की आज्ञानुसार सब्जी खरीदने बाजार जा रहे थे। चढ़ा कोई मीनार पे, टाँग किसी और की टूटी।

मैं आप से कहना चाहूँगा कि जिन्दगी बड़ी जटिल है, और सामूहिक कर्मों के जो परिणाम आएँगे, वे भी हमें भोगने पड़ेंगे।

समझो कि अभी हम यहाँ बैठे हैं, परमात्मा की तलाश में, ध्यान,

समाधि लगाने की तैयारी कर रहे हैं। हो सकता है कोई आतंकवादी आकर बम गिरा दे और हमारी कब्र वाली समाधि बनावाने का इंतजाम कर दे। यद्यपि हमारा उससे कोई लेना-देना न था, शायद वह हमें पहचानता तक न था। मगर वे लोग नाराज़ हैं। वे सरकार से, न्याय व्यवस्था से बदला ले रहे हैं। वे अपनी दहशत दिखाने के लिए हर किसी को मार-काट रहे हैं। सीधा हमारा कर्म तो नहीं है, लेकिन एक समूह का, समाज का, देश का, विश्व का, बहुत से लोगों के कर्मों के जाल का मिलाजुला परिणाम भी हमें भोगना पड़ेगा। बम विस्फोट होगा अगर यहाँ, तो हम यह नहीं कह सकते कि हमारा इसमें कोई हाथ नहीं है, हम नहीं मरेंगे। हमें भी उसमें मरना होगा। कोई गुस्से में है। गुस्सा किसी और पर है। उसका परिणाम आपको भुगतान होगा। हमने पीछे जो कर्म किए हैं जिन्हे हम भूल भी गए, उनके भी परिणाम हमें भुगतने होंगे। कभी बीज बोए थे, कभी फल आएंगे। पुरानी भाषा में इसे भाग्य पुकारा जाता है। विगत कर्म, सामूहिक कर्म एवं प्रकृति में घट रही घटनाओं के मिले-जुले परिणाम को किस्मत कहा जाता है।

अतः भाग्य और कर्म के सिद्धांत में, मैं कोई भी विरोध नही देखता। कर्म हम कहते हैं- एक व्यक्ति के द्वारा किए गए कार्य को और भाग्य हम कहते हैं- पूरी समष्टि के द्वारा किए गए कार्य को। व्यक्ति समष्टि का अंग है, और समष्टि व्यक्तियों का एक्सटेन्शन, विस्तार है।

सब चीजें संयुक्त हैं। भाग्यवाद और कर्मवाद अलग-अलग नहीं हैं। आप पूछते हैं कि दयानिधि प्रभु ने किसी की बुरी किस्मत क्यों लिखी? दूसरे प्रश्न में यह बात साफ हो जाएगी।

दूसरा प्रश्न - ईश्वर ने यह दुनिया बनाई, मनुष्य जाति को

बनाया, फिर करुणावान ईश्वर अपनी ही संतानों को अर्थात् हमें इतना दुख क्यों देता है? क्या वह करुणामय न होकर कठोर पाषाण-हृदयी है?

जगाने के लिए। यदि सुख स्वप्न चल रहा हो तो हम सदा-सदा सोए ही रहेंगे। यदि जीवन में दुख न हों तो धर्म की भी कोई जगह न रह जाएगी। दुख हमारा दुश्मन नहीं है। दुख हमें चौंकाता है, हमें जगाता है, हमारे भीतर विवेक और प्रतिभा को पैदा करता है, उस दुख से मुक्त होने का हम उपाय ढूँढ़ते हैं और उसी से समस्त विकास होता है।

पशुओं ने, पक्षियों ने दुख से मुक्त होने का उपाय नहीं किया। वे उसके प्रति जागरूक नहीं हैं इसलिए उनका कोई विकास भी नहीं हो पाया। मनुष्य जाति अकेली विकसित हो रही है। इसकी वजह? इसका कारण है वो सुख-दुख का संयोग, वे पीड़ाएं, वे कष्ट। यदि वे न होते तो हमारी बुद्धि विकसित भी न होती। हम भी जानवरों की तरह ही जीते। इसलिए दुखों को भी अपना शत्रु न समझना, वे हमें जगाने के लिए हैं, हमारी विकास की प्रक्रिया का अनिवार्य हिस्सा हैं। और जब इस भाँति तुम देखोगे तो ईश्वर को धन्यवाद दोगे। अभी तुम्हारे प्रश्न में शिकायत छुपी है, नाराजगी है। काश, तुम दुख की इस गुणवत्ता को देख पाओ, तब तुम अस्तित्व के प्रति धन्यवाद से भरोगे, जिंदगी की सारी तकलीफों के लिए भी। कहोगे- हे प्रभु! क्या मजेदार कष्ट दिए, वाह रे दयालु! तेरा लाख-लाख शुक्रिया!!

मा काली की अद्‌भुत प्रतिमा देखी! शिव के सीने पर पैर रखे हुए, हाथ में हथियार, गले में नरमुंडों की माला, खूंखार जीभ....हिम्मतवर रहे हिन्दू जिन्होंने साक्षात मौत के पैगाम वाली मूर्ति को जगत जननी मा कहकर पुकारा। जन्म और मृत्यु एक ही डंडे के दो छोर हैं। जीवन का

आरंभ और अंत सूर्योदय और सूर्यास्त के समान हैं। दोनों का स्रोत एक ही है। पश्चिम के धर्मों ने ईश्वर और शैतान के द्वन्द्व में परम सत्ता को विभाजित कर दिया। भारत के अद्वैतवादी, सत्य के अनुभवी मनीषियों ने शुभ और अशुभ के लिए उत्तरदायी एक ही परमात्मा को जाना।

तीसरे सवाल के जवाब में आपको और स्पष्ट हो जाएगा कि वह दुष्ट अपनी संतान को कष्ट क्यों देता है?

तीसरा प्रश्न - पाप कर्म और पुण्य कर्म की परिभाषा क्या है?

कर्म से तय नहीं होता, भीतर की भावदशा से तय होता है। ऊपर-ऊपर से कर्म एक जैसे दिखाई पड़ते हैं, किंतु भीतर हमारी भावदशा, हमारा इरादा क्या है? हमारा इनटैंशन क्या है? उस पर निर्भर होगा। हमने किस चैतन्य की अवस्था से वह कर्म किया, उससे निर्धारित होगा कि वह पाप है या पुण्य। ऊपर-ऊपर से तय नहीं किया जा सकता कि ऐसा-ऐसा करना पाप है, कि वैसा-वैसा करना पुण्य है।

कल ही रात को एक मित्र से चर्चा के दौरान मैं नसरुद्दीन का एक बड़ा मजेदार किस्सा सुन रहा था। नसरुद्दीन जिस देश में रहता था, बगदाद शरीफ में; वहाँ के बादशाह से उसकी मित्रता थी। एक दिन बादशाह ने कहा कि नसरुद्दीन मैंने तय किया है कि जो भी आदमी झूठ बोलेगा उसको फाँसी पे चढ़ा दिया जाएगा ताकि हमारे देश में सारे पुण्यात्मा हो जाएँ, महात्मा हो जाएँ, सत्यवादी हो जाएँ। झूठ बोलने वाले को छोटी-मोटी नहीं, सीधी फाँसी की सजा मिलेगी। नसरुद्दीन ने सम्राट से कहा कि ऐसा संभव नहीं है क्योंकि यह तय करना बहुत मुश्किल है क्या सत्य है और क्या असत्य है?

दूसरे दिन सुबह की बात है, सम्राट अपने बगीचे में टहल रहा था,

नसरुद्दीन उसके बगीचे के बाहर से गुजरा। नमस्कार की उसने। सम्राट ने पूछा नसरुद्दीन कहाँ जा रहे हो सुबह–सुबह। नसरुद्दीन ने कहा कि हुजूर फाँसी पर चढ़ने जा रहा हूँ। सम्राट ने कहा कि सारी कायनात जानती है कि तुम मेरे अजीज दोस्त हो, तुम्हें कौन फाँसी देगा?

मुल्ला बोला कि इसका मतलब हुआ कि मैं झूठ बोलता हूँ और आपने कानून बना दिया है कि झूठ बोलने वाले को फाँसी पर चढाएँगे तो अब मुझे सजा–ए–मौत मिलनी ही चाहिए। सम्राट ने कहा तुम तो सच बोलने वाले आदमी हो, तुमको क्यों फाँसी देंगे? नसरुद्दीन ने फरमाया कि हुजूर, फिर अभी जो मैंने स्टेटमैन्ट दिया कि मैं फाँसी चढ़ने जा रहा हूँ। क्या मैं झूठ बोला? अगर मैं झूठ बोला तो मुझे चढ़ाओ फाँसी पर लेकिन याद रखना, अगर मुझे फाँसी पर चढ़ाया तो मेरा यह जो वक्तव्य था, यह सत्य सिद्ध हो जाएगा। मैंने यही तो कहा था कि मैं फाँसी पर चढ़ने जा रहा हूँ, तुमने मुझे चढ़ा दिया तो तुमने एक सत्यवादी को फाँसी पर चढ़ाया और यदि तुमने मुझे छोड़ दिया, फाँसी पर न चढ़ाया तब तुमने एक झूठे आदमी को छोड़ दिया क्योंकि मैं कह रहा था कि फाँसी पर चढ़ने जा रहा हूँ और तुमने मुझे छोड़ दिया... फाँसी तो मुझे लगी नहीं तो यह वचन तो झूठा निकला। अब बताओ क्या करोगे?

बेचारा बादशाह बड़ी मुश्किल में पड़ गया।

नसरुद्दीन ने कहा मैं आपको यही बताना चाह रहा था कि सत्य और असत्य, नैतिकता और अनैतिकता, पाप और पुण्य तय करना इतना आसान मामला नहीं है जो ऊपर–ऊपर से तय किया जा सके। वही बात मैं आपसे कहना चाहूँगा पाप कर्म और पुण्य कर्म की परिभाषा, ऊपर से तय नहीं होती, भीतर से तय होती है।

यदि तुम कोई कर्म होशपूर्वक कर रहे हो, प्रेमपूर्वक करुणा भाव से

कर रहे हो तो वह पुण्य है। इसके विपरीत अगर तुम किसी का नुकसान करने के इरादे से, किसी को हानि पहुँचाने के लिए, किसी को दुख देने के लिए, मूर्च्छा में कुछ कर रहे हो तो वह पाप है।

एक उदहारण से समझो। एक छोटा बच्चा है, वह देखता है एक दीपक कि लौ टिमटिमाती। आकर्षित होता है लौ की तरफ, पकड़ने जाता है उसे। एक अजनबी स्त्री वहाँ से गुजरती है, देखती है इस दृश्य को लेकिन चुपचाप वहाँ से मुस्कुराती हुई निकल जाती है। फिर एक दूसरी महिला वहाँ से गुजरती है, वह इस बच्चे की माँ है। बच्चे से प्रेम करती है। वह बच्चे को मना करती है कि बेटा दीपक कि लौ को मत पकड़ना, जल जाओगे। बेटा नहीं मानता, फिर भी पकड़ने की कोशिश करता है, तब माँ उसे जोर से डाँटती है, चिल्लाती है। अगर वह तब भी न माने तो माँ उसको एक चाँटा मारती है और उसको दीपक की लौ नहीं पकड़ने देती।

अब आप क्या कहोगे, यह डाँटना, डपटना, चाँटा मारना, यह हिंसा का कृत्य पाप है कि पुण्य है? ऊपरी कर्म से तय नहीं होगा, हमें देखना होगा उस महिला के भीतर इरादा क्या है! उसका इरादा है बच्चे को बचाना, वह जल न जाए, इसलिए उसको चाँटा मारा, इसलिए उस पर चिल्लाई, गुस्सा हुई। इसका क्रोध, इसकी हिंसा भी किसी करुणा से प्रेरित है और इसलिए वह पुण्य है। इसके हृदय में प्रेम छुपा है और पहली स्त्री जो चुपचाप वहाँ से गुजर गई, इस दृश्य को देखते हुए उसने कुछ भी न कहा, बच्चे को रोकने की कोशिश न की। देखने में ऐसा लगता है: कितनी दयालु स्त्री, इसने बच्चे को नहीं मारा और यह दुष्ट महिला देखो, बच्चे को पीट रही है, डाँट रही है। बच्चे की स्वतंत्रता में टांग अड़ा रही है। लेकिन ऊपर से तय नहीं होता, भीतर से तय होगा।

पहली स्त्री संवेदनहीन व कठोर है और दूसरी स्त्री प्रेमपूर्ण और करुणावान है। कृत्य गौण और बाहरी घटना है, वस्त्र-तुल्य है, भीतर जाँचना होगा, इरादा क्या है? वह आत्मा-जैसा है। तुम बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय कुछ कर रहे हो कि दूसरों को दुख और कष्ट पहुँचाने के इरादे से कुछ कर रहे हो, उससे तय होगा। क्रोध सदा बुरा नहीं होता और दया हमेशा अच्छी नहीं होती।

ये तीनों सवाल पूछने वाले मित्र को अब स्पष्ट हो गया होगा कि वह दुष्ट अपनी संतान को कष्ट क्यों देता है? क्योंकि क्रोध सदा बुरा नहीं होता और दया हमेशा अच्छी नहीं होती। घृणा सदा खराब और प्रीति सदा ठीक नहीं होती। अब समझे कि प्रभु करुणामय न होकर कठोर पाषाण-हृदयी क्यों है? कभी-कभी प्रेम की वजह से ही नफरत करनी पड़ती है और करुणा के कारण ही पत्थर-दिल हो जाना पड़ता है। संक्षेप में समझ लें कि विवेक का विकास महत्वपूर्ण है, चाहे जिस विधि हो। मामला जटिल है... मैं क्या करूं, जीवन ऐसा है! मैं सिद्धांत की चिंता नहीं करता, तथ्यों का ख्याल रखता हूं।

धन्यवाद और शुभ रात्रि।

संन्यास दीक्षा और आश्रम व्यवस्था

अभी हमने ओशो का यह अनूठा प्रवचन 'संन्यास' पर सुना। आज इतने सारे मित्रों ने संन्यास दीक्षा ली, देखकर बहुत आह्लादित हूं। ओशो के वचन स्मरण रखना संन्यास यानि जीवन जीने की कला। सरलता पूर्वक, सहजता पूर्वक, समझ पूर्वक, प्रेम और अहोभाव से ओतप्रोत जीना। इस जटिल दुनिया में, इस कुटिल जगत में कठिन तो है, लेकिन उस कठिनाई को चुनौती मानना। कितनी अजीब बात है कि सरलता पूर्वक जीना कठिन हो गया है। इस बड़े पागलखाने में जिसे लोग दुनिया कहते हैं, सभ्य समाज कहते हैं, इस 'मैडहाउस' में स्वस्थ होना बड़ा मुश्किल हो गया है। इसलिए आश्रम की, कम्यून की आवश्यकता पड़ जाती है। जहां आसानी से सरल-सहज हुआ जा सके। जहां स्वभाविकता स्वीकृत होगी। जहां सरलता का समादर होगा। कोई अपमान नहीं करेगा- जीवन जैसा परमात्मा ने दिया है, वैसा हम जी सकेंगे।

इसी वजह तो जरूरत पड़ती है कम्यून बसाने की। विक्षिप्त लोगों की दुनिया में सहज होना बहुत मुश्किल है। लोग जीने दं रहे हैं बाहर दुनिया में, यही बहुत है! उनका बस चले तो मार ही डालें। जीसस क्राइस्ट और मीरा के साथ वही कोशिश की। मंसूर का गला काट दिया।

विक्षिप्तों की भीड़ के बीच में स्वस्थ होना दुष्कर है। इसलिए जरूरी है, जिनके मन में स्वास्थ्य के लिए समादर है, सहजता और सरलता के प्रति जिनके मन में सम्मान का भाव है, जो परमात्मा की इस अद्‌भुत भेंट 'जिंदगी' को स्पॉन्टेनियस जीने के पक्ष में हैं; वे थोड़े से लोग कुछ करें। चुपचाप बैठने से कुछ नहीं होगा। यदि आपको बात ठीक लगती है तो कुछ करना होगा। इस दुनिया को बदलने के लिए कर्मठ बनना होगा। और दुनिया बदले या न बदले, कम से कम अपने स्वयं के लिए तो कुछ उपाय करने ही होंगे। वह तो हमारी स्वयं की अपनी जिम्मेवारी है।

मुझे स्मरण आता है कि ओशो ने कहीं पर प्रवचन दिया, फिर बाहर निकलकर उन्होंने आयोजकों से पूछा कि कैसा लगा? आयोजकों ने कहा, बहुत अच्छा लगा आपका प्रवचन। ओशो ने कहा, अगर तुम कहते कि ठीक लगा तो मुझे ज्यादा खुशी होती। 'अच्छा लगा' में ऐसा लगता है कि मनोरंजन हुआ। अच्छा लगने में रूपातंरण की बात नहीं आती; सुनकर अच्छा लगा, ताली बजाई और घर चले गए। कुछ समय आराम से बीत गया। 'ठीक लगा' का अर्थ है अब कुछ करना होगा। आराम संभव नहीं, अब कुछ साधना और श्रम में लगना होगा। यदि ओशो जो कह रहे हैं वह 'ठीक है', तो रूपातंरण से गुजरना होगा। जिस ढंग से हम जीते आ रहे हैं उसे बदलना होगा। कुछ मेहनत करनी होगी। केवल 'अच्छा लगा' तो परिश्रम का कोई प्रश्न पैदा नहीं होता। अच्छा लगा, मजा आया, टाईम पास हो गया, आप अपने घर चले गए। बात खत्म। यदि ठीक लगा तो फिर हाथ पर हाथ रखे बैठ नहीं सकते। यदि आपको बात जंची तो स्मरण रखें, कुछ निर्णय लेना होगा, कुछ करना होगा।

आज नये साधक संन्यास के इस निर्णय में शरीक हुए हैं कि अपने जीवन को एक नये ढंग से, सहज ढंग से, प्रेमपूर्वक, ध्यानपूर्वक, स्वीकार भाव में जीना शुरु करेंगे। परमात्मा ने जो कुछ भी दिया है वह सब स्वीकार है, उसके चरणों में समर्पण! उसमें कुछ कांट-छांट नहीं करनी है। कोई अस्वीकृति या विरोधभाव न हो। धार्मिक आदमी वह है जो परमात्मा की इस अद्भुत भेंट 'जीवन' को समग्रता से, प्रेम से, बिना शिकायतभाव के, सहर्ष स्वीकार करता है। प्रभु ने जो दिया उसे अंगीकार करता है। वही तो आस्तिक हुआ।

जो तथाकथित आस्तिक, झूठे धार्मिक हैं, वे खुद से लड़ रहे हैं। अपने आप को बदलने की कोशिश कर रहे हैं कि मेरे अन्दर क्रोध क्यों है? नहीं होना चाहिए। काम वासना क्यों है? इसे खत्म कर डालना है, ब्रह्मचर्य साधना है। वे ब्रह्मचर्य की नई वासना से भर गए हैं। पुरानी कामना जहां के तहां है, नई कामना-विरोधी कामना का भूत सवार हो गया। वे कह रहे हैं, मेरे अन्दर लोभ क्यों है? इसको समाप्त कर डालना है, इसका बिल्कुल गला घोंट देना है, तभी स्वर्ग मिलेगा, मोक्ष प्राप्त होगा। स्वर्ग पाने के लोभ में ही बेचारे लोभ, मोह को त्यागने की सोच रहे हैं। यह तो नासमझी एवं नास्तिकता के लक्षण हुए। तुम परमाप्ता से ज्यादा समझदार हो गए क्या? उसने जो दिया है, उसका कुछ उपयोग होगा।

हाँ, इन सबका अतिक्रमण सम्भव है। लेकिन वह अतिक्रमण तो उनको जागरूकता पूर्वक जीने से, बड़ी गहरी समझ विकसित करने से आयेगा। अवश्य, ब्रह्मचर्य घटित होगा एक दिन; लेकिन वह कामवासना को जागकर जीने से, होशपूर्वक भोगने से होगा। भागने से नहीं। पुराना संन्यासी भगौड़ा था। वह समस्याओं को छोड़कर भाग जाता था। ओशो के संन्यासी को भागना नहीं है, जागना है। और जागकर भोगना है। उस जागने से रूपातंरण घटित होगा।

अपने व्यक्तिगत जीवन में इस बात का स्मरण रखें। परमात्मा ने जीवन

जैसा दिया है, उसका पूरा-पूरा स्वीकार। उसको सहजता से, सरलता से जीना है। और आज कम्यून की जो बात कही थी, दोपहर को जो चर्चा हुई थी, उस सम्बन्ध में भी थोड़ा ख्याल करें। यदि आपको प्रतीत होता हो कि बात ठीक लगती है, कुछ सहज, सरल, स्वस्थ लोग जीवन को स्वीकार भाव से जीने वाले लोग इकट्ठे जी सकें तो बेहतर होगा। क्योंकि समाज में तो जीने की आजादी नहीं है। वहां तो बहुत मुश्किल खड़ी हो जाएगी। तो हमें एक अलटरनेट फैमिली, एक वैकल्पिक परिवार या समाज बनाना होगा। वह आज के समय की जरूरत है। काश, यह दुनिया पूरी स्वस्थ होती! तो ऐसा करने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। लेकिन जैसी दुनिया है, फिलहाल अति-रुग्ण हालत में, तो हमें कुछ करना होगा। जो लोग ओशो की बात समझ रहे हैं- उनके लिए; वे अपने ढंग से जी सकें, उस देशना के अनुसार चल सकें, उनके लिए कुछ व्यवस्था करनी होगी। ऐसा समझें, थोड़े-से लोग अगर पागल होते हैं तो उन्हें हम पागलखाने में बंद कर देते हैं ताकि बाकी का समाज ठीक से चल सके। लेकिन हालत अब उल्टी हो गई है। पूरी दुनिया पागल है। मुश्किल यह है कि थोड़े से स्वस्थ लोग हैं, तो उनको बंद करके कहीं रखना पड़ेगा, कुछ इन्तजाम... ताकि कहीं वे पागलों की भीड़ में खो न जाएं! जो थोड़े स्वस्थ हो गए हैं, उन्हें इकट्ठा करना होगा। अतीत में 'पागलखाने' बनते थे, अब 'स्वस्थखाने' बनाने होंगे। कम्यून अथवा आश्रम- मतलब स्वस्थखाना! जो लोग नैसर्गिक स्वस्थ शैली में जीना चाहते हैं उन्हें कहीं चारदिवारी में घेरकर, बंद करके स्वस्थ रखना पड़ेगा। अन्यथा यह भीड़ उनको पागल कर देगी। संक्रामक बीमारी से ग्रस्त रोगियों के लिए पृथक अस्पताल होते हैं, ताकि उनका इन्फैक्शन कोई और न पकड़ ले। यदि बहुतायत में लोगों को इन्फैक्सश बीमारियां हो जाएं तब बचे-खुचे व्यक्तियों की सुरक्षा करनी पड़ेगी।

इस सम्बंध में यदि आपको कुछ करने जैसा लगता है, बात ठीक लगती है तो फिर हाथ पे हाथ रखे नहीं बैठे रहना है। कुछ करना होगा,

निर्णय लेना होगा। हम अक्सर सोचते हैं कि अभी तो हमने कोई निर्णय नहीं किया। अभी सोच रहे हैं, निर्णय करेंगे। नहीं, वास्तव में ऐसा नहीं है। निर्णय तो हर क्षण करना होता है। यदि आप पक्ष में निर्णय नहीं करते, तो आप विपक्ष में जा रहे हैं। किसी बात को पोस्टपोन करते हैं, कोई डिसीजन नहीं लेते, तब भी निर्णय तो हो ही रहा है। यह मत सोचना की मैंने कोई निर्णय नहीं लिया; आप निर्णय नहीं करने का निर्णय कर रहे हैं। अनिर्णय भी एक निर्णय है। आप उत्तरदायित्व से बच नहीं सकते। अगर आप कुछ नहीं कर रहे हैं तो आप यह नहीं कह सकते कि मैंने तो कुछ किया नहीं। मैं तो विचार कर रहा हूँ। नहीं, विचार करते-करते भी बहुत देर हो जाएगी। आपने देरी का तय किया है। तय करने से बचना नामुमकिन है। इससे तो अच्छा है जल्दी तय करें। अति-विचारशील लोग कभी निर्णय पर नहीं पहुंच पाते।

ओशो ने डेनमार्क के प्रसिद्ध दार्शनिक सोरेन कीर्कगार्ड की कहानी सुनाई है। कीर्कगार्ड बड़े सोच विचार वाला आदमी था- अत्यंत चिंतनशील, महान दार्शनिक। उसने किताब लिखी है आईदर-ऑर यानी 'यह या वह?' सोरेन का मन हमेशा यह-वह, इधर-उधर में डोलने वाला अति-चंचल चित्त था। कभी कोई निर्णय पर नहीं पहुंच पाता था। विचार कभी निर्णय पर नहीं पहुंच सकता।

कीर्कगार्ड कार से कहीं जा रहा है। चौराहे पर कार खड़ी करके वह सोच रहा है कि दाएं जाएं कि बाएं? इस पक्ष में की उस पक्ष में- भीतर तर्क-वितर्क चल रहे है। और ट्रैफिक जाम हो गया। धीरे-धीरे ट्रैफिक पुलिस के लोग पहचानने लगे कि यह कीर्कगार्ड की कार है। तो जहां उसकी कार देखते धक्का मारके एक तरफ कर देते। भैया, कहीं तो जाओ। तुम यहां खड़े होकर सोच विचार न करो। कि पीछे जाएं या आगे जाएं, दाएं मुड़ जाएं, फायदा क्या है जाने से? लौट ही क्यों न जाएं? तो पुलिस वाले उसे धक्का मार दें, कहीं भी जाओ, यहां से तो खिसको

दार्शनिक महोदय!

अनिर्णय भी एक निर्णय है इस बात का ख्याल रखिएगा। यदि आप सोचते है कि मैंने अभी निर्णय नहीं लिया है। यह अनिर्णय की स्थिति भी एक निर्णय है। यह आपका डिसिजन है कि चौराहे पर खड़े रास्ता जाम करेंगे। आप बात तो टाल नहीं सकते कि मैंने अभी निर्णय नहीं किया। यह भी एक निर्णय है।

कीर्कगार्ड के जीवन की घटना है, यह मजाक नहीं है। एक लड़की ने उससे निवेदन किया कि मैं तुमसे बहुत प्रेम करती हूँ कीर्कगार्ड। कितना अच्छा हो कि हम विवाह कर लें। कीर्कगार्ड ने कहा कि ठीक, इस सम्बन्ध में मैं सोचूंगा, मनन करूंगा। वह लड़की हैरान हुई कि प्रेम के सम्बंध में मनन नहीं करते हैं लोग। प्रेम तो हृदय की बात है। या तो हां, या ना। कीर्कगार्ड ने कहा, सोच विचार करूंगा। लड़की एक-दो बार फिर मिली। उसने पूछा कि कुछ निर्णय लिया? कीर्कगार्ड ने कहा कि मैं उसी पर कार्य कर रहा हूँ। उस लड़की ने कहा- कार्य कर रहे हो, क्या मतलब? उसने बताया, दो महीने से, जब से तुम मिली हो, मैं करीब पांच छः घण्टे रोज उसी पर मेहनत कर रहा हूँ। लाइब्रेरी जाता हूँ, प्रेम के ऊपर जितना साहित्य है, उसको पढ़ रहा हूँ- पक्ष में विपक्ष में तर्क जुटा रहा हूं कि प्रेम करना चाहिए या नहीं करना चाहिए? नोट्स बना रहा हूँ। विद्वानों के मंतव्य एकत्रित कर रहा हूं। चार डायरियां भर चुकी हैं- दो डायरियां पक्ष में, दो डायरियां विपक्ष में। लेकिन अभी तक दोनों तरफ तर्क बराबर मिले हैं। निर्णय अभी हुआ नहीं। विवाह करना है कि नहीं करना, उसी पर श्रम कर रहा हूँ। लड़की फिर दो-तीन महीने बाद मिली। कीर्कगार्ड ने कहा कि गद्य पुस्तकें जितनी हैं वे तो पूरी हो गईं, अब पद्य साहित्य देखना है। कवियों ने क्या कहा है प्रेम और विवाह के सम्बंध में? थोड़े समय में पता चल जाएगा। वह लड़की फिर तीन-चार महीने बाद मिली। कीर्कगार्ड ने कहा कि मैं बहुत परिश्रम कर रहा हूँ। मेरे घर के पास जो लाइब्रेरी थी वह तो

पूरी खत्म हो गई। अब यूनिवर्सिटी की बड़ी लाइब्रेरी ज्वाइन कर ली है। उस लड़की ने सोचा यहां मामला जमने वाला नहीं। किस सिरफिरे के चक्कर में पड़ गई मैं!

तर्क तो दोनों तरफ बराबर रहते हैं। तर्क के साथ यही मुश्किल है। तर्क जितने पक्ष में होते हैं उतने ही विपक्ष में होते हैं। अगर तर्कों से तय करने चले तो आप छोटी-सी चीज का भी निर्णय नहीं कर सकते। सोचने लगो कि अभी सांस लूं या न लूं... श्वास क्यों लेना? तर्क-वितर्क में पड़ गये... तो गये काम से। क्योंकि जब तक निर्णय हुआ नहीं, आप सांस नहीं लेंगे! पहले सोच विचार तो करो। साहित्य पढ़ो कि सांस लेने से क्या फायदा? विद्वानों के मंतव्य खोजो। कितने लोग हवा में उपस्थित बैक्टीरिया और वायरस के कारण बीमार हो जाते हैं। आंकड़े एकत्रित करो कितने लोग हर साल टी.बी. के शिकार होते हैं? 'एयर बोर्न डिसीज' से मर जाते हैं। अगर ऐसा सोचने लगे तो फिर निर्णय करने का अवसर नहीं आएगा, उसके पूर्व ही प्राणांत हो जाएंगे। समझदार इंसान बगैर सोचे कैसे कुछ कर सकता है! फिर बीमारी से नहीं विचार से मरोगे। चिता पर नहीं चिंता में मरोगे। नहीं, जीवन के सभी महत्वपूर्ण निर्णय हृदय से आते हैं, भाव से जन्मते हैं। विचार से आज तक कभी कोई कीमती निर्णय नहीं हुआ।

कीर्कगार्ड लंबे समय बाद तय कर पाया कि शादी करनी है। वह बड़ा खुश हुआ उस दिन। याद रखना, उसने खुद ने तय नहीं किया। लाइब्रेरी का जो चपरासी था, लाइब्रेरी को जो खोलता-बंद करता, सफाई करता था; उसने कीर्कगार्ड को सलाह दी। वह देख-देखकर हैरान था कि यह आदमी कब से श्रम कर रहा है। रोज आकर पांच-सात घंटे खराब करता है।

सोरेन कीर्कगार्ड ने तय किया उस अनपढ़ चपरासी के कहने से। क्योंकि उसने कहा कि एक बात तो तय है तुम्हारे तर्क आधे शादी के पक्ष में हैं, आधे विपक्ष में हैं। एक तर्क मैं देता हूँ उसके विपक्ष में कोई तर्क

नहीं है। कीर्कगार्ड ने कहा, अरे, शीघ्र बताओ। उसने कहा कि देखो शादी के अनुभव से गुजरकर ही पता चलेगा कि वस्तुतः करने योग्य थी कि नहीं? कुछ चीजें हैं जो बाद में पता चलती हैं– 'पास्ट–टैंस' में ज्ञान होता है। स्वभावतः, इसके विपरीत तो कोई तर्क हो नहीं सकता! कीर्कगार्ड ने कहा, ठीक। हद हो गई, यह बात मेरी समझ में पहले क्यों नहीं आई? आज तय हो गया कि शादी करनी है।

कीर्कगाड उस लड़की के घर गया। घण्टी बजाई। एक बूढ़े आदमी ने दरवाजा खोला। कीर्कगार्ड ने पूछा– क्या आप उस लड़की के पिता हैं? उत्तर मिला– हां, मैं उसका पिता हूँ।

उसने कहा कि मैं सोरेन कीर्कगार्ड हूँ। आपकी बेटी ने मुझसे विवाह का प्रस्ताव किया था। मैं आज प्रस्ताव स्वीकार करने आया हूँ। उस बूढ़े आदमी ने सिर ठोंक लिया, बोला– मेरी लड़की की शादी हुए बीस साल बीत चुके हैं कीर्कगार्ड। उसने कितना इंतजार किया तुम्हारा! मगर तुमने बहुत देर कर दी। कल उसकी बेटी की शादी है।

जिंदगी इंतजार नहीं करती। निर्णय तो करना ही होगा। यह नहीं कह सकते कि हम अनिर्णय में हैं। क्योंकि आपके निर्णय न करने से जीवन रुकता नहीं है। जीवन तो आगे बढ़ता जाता है। जीवन प्रतीक्षा नहीं करता। समय ठहरता नहीं। मौत प्रतीक्षा नहीं करती। इस जीवन में कुछ प्रतीक्षा नहीं करता। समय से सूरज निकल आता है, मौसम बदल जाते हैं। चीजें घटती चली जाएंगी। आप कब निर्णय कर पायेंगे, पता नहीं? लेकिन चीजें तो घटेंगी। मृत्यु आपसे पूछकर नहीं आयेगी कि आपने कुछ फैसला किया या नहीं किया; आ जाऊं कि नहीं आऊं? नहीं, एक दिन मौत बिना दस्तक दिए आ जाएगी। जो भी करने योग्य लगता है, उसे शीघ्र करें। जो करने योग्य लगता है उसे आज ही करें। कल पर न टालें। 'कल' पर टाला हुआ 'काल' पर टल जाता है। वह हमेशा–हमेशा के लिए टल जाता है। जो भी करना है उसे आज करना है। जो नहीं करना है उसे कल पर छोड़ देना

चाहिए। लेकिन स्पष्ट होना चाहिए कि हमें यह करना ही नहीं है। एक बार भीतर स्पष्ट हो जाए, बात साफ हो जाए, फिर बात खत्म हो जाती है।

आपसे विदा लेने के पूर्व एक छोटा सा संदेश देना चाहूंगा, खासकर नये मित्रों के लिए, जो आज संन्यास में दीक्षित हुए हैं। ओशो के प्रवचनों में शायद आपने रामकृष्ण परमहंस की कथा सुनी होगी। वे स्वाद के बड़े लोलुप थे। भोजन के प्रति उनका बड़ा लगाव था। तो कभी आगंतुकों के संग ब्रह्मचर्चा चल रही, शिष्य बैठे हैं, दार्शनिक बातें हो रही हैं; और अचानक बीच में उठकर वे किचिन में पहुंच जाते और अपनी पत्नी से पूछते कि शारदे आज क्या बना है भोजन में? कौन सी सब्जी बनी है? उनके शिष्य कहते कि आप कैसा करते हैं? लोग आपको परमहंस समझते हैं, बुद्धत्व को प्राप्त मानते हैं। और आप ऊँची-ऊँची महान् बातचीत छोड़कर बीच में उठकर पूछते हैं कि सब्जी क्या बनी है? उनकी पत्नी भी कहती कि बड़ा संकोच लगता है, इतने लोग दूर-दूर से आए हैं, भक्त आपके दर्शन करने आए हैं, और आप अनायास विषय परिवर्तन करके पूछने लगते हैं कि आज पूरी बनी है कि परांठा बना है? यह शोभा नहीं देता। एक दिन रामकृष्ण ने कहा शारदा से, मेरे जीवन के सारे रस तो विदा हो चुके हैं। मोह के सारे बंधन टूट चुके हैं। मेरी जीवन की नाव जिन जंजीरों से बंधी थी तट से, वे सब जंजीरें खुल चुकी हैं। और हवाएं मेरे जीवन-नौका को उस पार ले जाने के लिए तत्पर हैं। सब तैयारी हो चुकी है। अब मेरा कोई बंधन नहीं है। मैं मुक्त हो चुका हूँ। जानबूझ कर एक रस्सी मैंने बांध रखी है, ताकि कुछ दिन और इस तट पर रह लूं। जीवेषणा की डोरी स्वाद के रस से मैंने बांध रखी है। जानबूझ कर स्वाद-लोलुपता बचा रखी है। एक वासना बचा के रखी है। उसके सहारे इस तट पर कुछ दिन और रुकना हो जायेगा। जिस दिन वह जंजीर भी खुल जाए तो जानना की मेरे जीवन के अंतिम तीन दिन शेष हैं। फिर मैं इस जीवन से विदा ले लूंगा।

बात आई–गई हो गई। शारदा भी इस बात को भूल गई। कोई छः सात वर्ष बाद की घटना– शारदा थाली लगाकर रामकृष्ण के कमरे में पहुँची है। वे बिस्तर पर लेटे हुए हैं। हमेशा तो थाली देखकर एकदम छोटे बच्चे की तरह पुलक से भरकर, कूद के आ जाते थे कि आज क्या बना है? थाली छीन लेते, चखना शुरू कर देते थे। आज उन्होंने थाली को देख कर करवट बदल ली। शारदा को स्मरण आई– सात वर्ष पुरानी बात जो उन्होंने कही थी। उसके हाथ से थाली छूटकर झनझनाकर गिर गई। वह रोने–चीखने लगी, छाती पीटने लगी। आश्रम के सारे शिष्य जमा हो गए। उन्होंने पूछा, क्या हुआ? शारदा ने कहा कि बस परमहंस के जाने के सिर्फ तीन दिन बचे हैं। आज पहली बार उन्होंने भोजन के प्रति रस नहीं दिखाया। इस संसार के तट से उनकी जो अन्तिम रस्सी बंधी थी, वह छूट आज गई। वह मुक्ति की ओर, निर्वाण की ओर गति कर जायेंगे। सारे शिष्य रोने लगे। रामकृष्ण ने कहा– रोते क्यों हो? तुम्हारी आंखों में आंसू कैसे! उन्होंने कहा, आप हमें छोड़कर जा रहे हैं। हमारे जीवन में आपसे प्रकाश था। आपसे मार्ग दर्शन लेते थे, आपसे पूछते थे। आप चले जाएंगे, अब कौन हमें मार्ग दिखाएगा? कौन हमें सहारा देगा? रामकृष्ण ने कहा– मैं जा कहां रहा हूँ? कौन जा रहा है, कहां जा रहा है? यहीं था, यहीं रहूंगा। अभी एक रूप एवं आकृति में बंधा था। हां, वह आकृति विदा हो जाएगी। अब मैं सब में फैल जाऊंगा। तुम सबमें फैल जाऊंगा। इन पेड़–पत्तों में होउंगा। इन फूलों में खिलूंगा। इन पक्षियों में मेरी आवाज होगी। पहले एक कंठ से भोजन लेता था। अब तुम सबके कंठ से भोजन लूंगा। पहले मेरे सिर्फ दो हाथ थे। अब मैं विस्तीर्ण हो जाऊंगा। तुम सब शिष्यों के हाथ मेरे हाथ होंगे। तुम्हारे हाथों से मैं काम करूंगा। पहले मात्र दो आंखों से देखता था, अब तुम्हारी हजारों आंखों से देखूंगा। तुम्हारे मुँह से बोलूंगा। जा कहां रहा हूँ? यहीं रहूंगा। कितना तो तुम्हें समझाया कि जो है वह कभी मिटता नहीं। सब मैं फैलकर विस्तीर्ण हो जाऊंगा।

यही सन्देश मैं आप सबको देना चाहता हूँ। आज ओशो का महापरिनिर्वाण दिवस है। इस अवसर पर याद रखना, आपकी आँखें अब ओशो की आँखें है। आपके हाथ अब ओशो के हाथ है। आपकी वाणी अब ओशो की वाणी है। जो नए मित्र संन्यास में दीक्षित हुए हैं, और जो पुराने मित्र हैं उनके लिए भी- अब आप ओशो के हाथ हैं। आप ओशो की वाणी हैं। आप ओशो की आंखें हैं। वही देखें जो देखने योग्य है। वही करें जो करने योग्य है। वहीं जायें जहां जाने योग्य है। वही बोलें जो बोलने योग्य है। परमात्मा आपके भीतर विराजमान है। परमात्मा शब्द से एक डिस्टैंस, एक प्रकार की दूरी का अनुभव होता है। ओशो हमारे परम प्रिय, हमारे गुरु हैं। उनसे हमें प्यार है। उनको हमने देह-रूप में देखा है, मानव-आकृति में देखा है। परमात्मा तो अरूप व निराकार है, उससे सम्बंध जोड़ना थोड़ा कठिन है। लेकिन गुरु से हमें प्रेम है, जिसके प्रति हमारी श्रद्धा है, उसका भाव करना सुगम है। आपके भीतर अब ओशो विराजमान हैं, इसी भाव से जीएं। यह भाव छूटे न। यह ओशो के चित्र वाली माला जो बाहर गले में पहन रखी है, यह तो सिर्फ प्रतीक है। भीतर भी वही विराजमान हैं, जिनका लॉकेट माला में मौजूद है। यह स्मरण छूटे न। फिर आपका जीवन एक साधारण जीवन नहीं रह जायेगा। असाधारण और अद्वितीय जीवन हो जायेगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना। उससे बहुत-बहुत अनुग्रहीत हूँ। और अन्त में आप सबके भीतर उपस्थित ओशो-चैतन्य को प्रणाम करता हूँ। मेरे प्रणाम स्वीकार करें। कीर्तन करके अहोभाव में डूबते हुए यहां से विदा हों। कीर्तन के प्यारे बोल स्वामी योग प्रीतम के लिखे हैं- **एक ओशो क्या मिल गए!**

'एक ओशो क्या मिल गए!
न तो चाहत है सितारों की, न तमन्ना है नजारों की।
जब ओशो मिल गए तो क्या जरूरत है हजारों की?

एक ओशो क्या मिल गए जिंदगी ये नमन हो गई,
जिंदगी एक थी हादसा अब तो चैनो अमन हो गई।

हम सोचते थे कि हम ही दीवाने हैं ओशो के,
पर उनके दीवानों का तो काफिला निकला।
दिल ने कहा कि चल, शिकायत खुदा से कर,
लेकिन खुदा भी उनको चाहने वाला निकला।

एक ओशो क्या मिल गए जिंदगी ये नमन हो गई,
जिंदगी एक थी हादसा अब तो चैनो अमन हो गई।

दिल चाहता है कहना सबसे तेरे फसाने को,
हो जाए खबर कोने-कोने में इस जमाने को।
दुआ बहार की मांगे बिन इतने फूल खिले हैं,
कहीं जगह न बची अब मेरे आशियाने को।

थे भटकते हवाओं के संग सूखे पत्तों के मानिंद हम,
वो जो आए तो आई बहार जिंदगी गुलचमन हो गई।

तू मुस्कुराए तो जाती बहार आ जाए,
दिले बीमार को फिर से करार आ जाए।
तेरे इलाज से बढ़कर इलाज क्या होगा?
तू लाजवाब है तेरा जवाब क्या होगा!
तेरी अदा पे फिदा हम तो क्या जमाना है,
निसार तुझपे मेरे दिल का हर खजाना है।
तेरे करम का किसी से हिसाब क्या होगा?
सामने 'रजनीश' के 'माहताब' क्या होगा!

एक अंधेरी गुफा से निकल आ गए सूर्य के गांव में,
उनसे मिल के लगा जिंदगी रोशनी का जश्न हो गई।

न जी भर के देखा न कुछ बात की,
बड़ी आरजू थी मुलाकात की।

मेरे मुर्शिद से जब रूबरू मैं हुआ,
कुछ ऐसी उन्होंने करामात की–
जुबां चुप रही, आंखें बंद हो गईं,
कानों से पी मैंने हाला जज्बात की।
मौन में क्या घटा, क्या बताऊं तुम्हें,
मिट गई सारी दुनिया सवालात की।

जिंदगी बस हमारे लिए शोरगुल का ही एक नाम थी,
उनसे मिल के जो सरगम छिड़ा जिंदगी एक नज्म हो गई।

जो सामने होता है उसे लोग बुरा कहते हैं,
जिसको देखा ही नहीं उसको खुदा कहते हैं।
जब तक खुदी बाकी है बंदगी होती नहीं,
मुर्शिद में खुदा देखने वाले को बंदा कहते हैं।

ये न पूछो अहम् ने हमें कैसे कैसे दिखाए थे दिन,
जब इबादत में सिर झुक गया जिंदगी ये भजन हो गई।
एक ओशो क्या मिल गए जिंदगी ये नमन हो गई,
जिंदगी एक थी हादसा अब तो चैनो अमन हो गई।

साक्षी से समाधि की ओर

साक्षी की साधना का अर्थ विस्तार से समझायें। दृश्य, द्रष्टा, साक्षी और बोध, इनका क्या तात्पर्य है? हम अपने दैनिक जीवन में, अपने व्यवसाय और गृहस्थी में उलझे रहते हैं। ऐसी स्थिति में साक्षी किस प्रकार साधा जाए? साक्षी की राह चलते-चलते क्या संबोधि तक पहुँचना सम्भव है?

साक्षी एक मुकाम है बीच का, संबोधि की राह पर एक पड़ाव है। निश्चित रूप से साक्षी भाव तक जाना होगा और उसके आगे भी जाना होगा। यदि कोई व्यक्ति केवल साक्षी में रुक जाए तो भी वह सम्बोधि तक नहीं पहुँच पाएगा। और जो व्यक्ति साक्षी की साधना न करे, उसके पहुँचने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता। तो साक्षी से गुजरना होगा लेकिन गुजरके आगे बढ़ जाना होगा। पूछते हो साक्षी का क्या अर्थ है? अपना होश रखते हुए

कुछ भी करना अथवा कुछ भी न करना साक्षी भाव है। सरल सी भाषा में इसको ऐसा समझें कि जब भी संसार में कोई घटना घटती है तो हमारे चित्त पर एक कंपन होता है, एक प्रतिक्रिया होती है। उस कम्प के प्रति जागरुक होने का नाम द्रष्टा भाव है और इस द्रष्टा के पीछे भी एक और जानने वाला तत्व है, उसको जानने का नाम साक्षी है। तो द्रष्टा का द्रष्टा साक्षी है। तो इन तीन-चार शब्दों को समझें, एक है दर्शक, वह जो दृश्य को देख रहा है। आपसे बाहर जो घटनाएँ घट रही हैं वे आपके लिए दृश्य हैं और आपका शरीर उनका दर्शक है। आपकी आँखें देखती हैं, आपके कान सुनते हैं, आपके हाथ स्पर्श करते हैं। उस दृश्य की अनुभूति विभिन्न इन्द्रियों से पहुँचती है। तो यह दृश्य और दर्शक का सम्बन्ध संसार का सम्बन्ध है। जब इस दृश्य से उत्पन्न होने वाले प्रभावों को हम अपने भीतर देखते हैं, उसका नाम है द्रष्टा भाव। समझें कि सड़क पर आप जा रहे थे और एक हजार रुपये का नोट पड़ा देखा और मन में लोभ की एक तरंग पैदा हो गई या किसी सुन्दर युवती को अपने जाते हुए देखा और मन में काम-वासना की लहर उत्पन्न हो गई या कोई भयानक आवाज हुई और भय की तरंग पैदा हो गई। ये तीनों ही बातें- वासना, भय और लोभ मन में उठी तरंगे हैं। जब आप उस ऑबजेक्ट से मुक्त हो गए, जिससे ये तरंगें पैदा हुई थीं और आप अपने भीतर की उन तरंगों की निगरानी करने लगे, इनका अवलोकन करने लगे, जब आप भय, वासना अथवा लोभ को देखने लगे, उस स्थिति का नाम है द्रष्टा भाव। लेकिन इसके पीछे एक कदम और खिसका जा सकता है। इस द्रष्टा को भी जो जान रहा है, वह है साक्षी चैतन्य। वह साक्षी सदा एक-सा रहता है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं है। वह चेतना की निष्कम्प अवस्था है। ऐसा समझें, हमारी चेतना के दो हिस्से हैं। एक हिस्सा वह जो कंपित हो जाता है और एक हिस्सा सदा निष्कंप बना रहता है। कम्पित

हिस्से को जानना द्रष्टा भाव है। कम्पित और अकम्पित दोनों को एक-साथ जानना साक्षी भाव है। और अकेले अकम्पित चैतन्य में डूब जाना बोध है। तो सामान्य संसार में हमारी जो अवस्था है, वह दर्शक की अवस्था है।

ध्यान की शुरुआत होती है द्रष्टा से, ध्यान का मध्य है साक्षी भाव, और साक्षी से भी आगे जब हम जाते हैं, तब हम समाधि में प्रवेश करते हैं, बोध में प्रवेश करते हैं। तो ये चार शब्द बहुत ही महत्वपूर्ण हैं, प्रत्येक साधक को समझने जैसे हैं— दर्शक, द्रष्टा, साक्षी और बोध। बोध का अर्थ है केवल चैतन्य ही रह गया। जो जानने वाला है वह स्वयं को ही जान रहा है। वह दृश्य है न दृश्य का कोई प्रभाव है। कोई भी कंपन शेष न रहा। उस निष्कंप अवस्था में चेतना स्वयं को ही जान रही है,ँ ीमतम जीम वइेमतअमत ी इमबवउम जीम वइेमतअमकण ज्ञाता और ज्ञेय जहाँ एक हो गए, ज्ञाता स्वयं को ही जान रहा है, वह स्वयं ही ज्ञेय बन गया। उस अवस्था का नाम है बोध मात्रा या कह लें शु(बोध, परम बोध। तो साक्षी एक पड़ाव है इस परम बोध में जाने के लिए। इसलिए साक्षी मंजिल नहीं है।

आपने पूछा है कि क्या साक्षी की राह चलते-चलते संबोधि तक पहुँच जायेंगे। पहुँच जायेंगे यदि साक्षी से भी आगे बढ़े तो। यदि साक्षी पर ही अटक गए तो ऐसा हुआ जैसे आप किसी मन्दिर में प्रवेश करने के लिए चले थे मन्दिर की देहरी पर, मन्दिर के द्वार पर जाकर रुक गए और भीतर गर्भ ग्रह में प्रवेश न किए। तो केवल साक्षी की साधना पर्याप्त नहीं है। एक कदम और उठना चाहिए साक्षी के भी आगे। आपने पूछा है कि दैनिक जीवन में व्यवसाय और गृहस्थी संभालते हुए सांसारिक कामों में उलझे हुए साक्षी किस प्रकार साधा जाए। साक्षी किसी भी अवस्था में साधा जा सकता है। सच पूछो तो साक्षी हमारा स्वभाव है। हम जरा ही उस तरफ ख्याल भर ले जायें, वह सदा ही मौजूद है। इसे साधने के लिए किसी

विशेष विधि-विधान की जरूरत नहीं है। क्योंकि यह हमारी सहज-स्वाभाविक अवस्था है। संसार के कामों में लगे हुए व्यवसाय और गृहस्थी को देखते हुए साक्षी भाव साधा जा सकता है। हम कुछ भी कर सकते हैं साक्षी भाव के साथ। जैसे हम कोई भी कृत्य बेहोशी में कर सकते हैं, ठीक वैसे ही कोई भी कृत्य साक्षी भाव से किया जा सकता है। साक्षी भाव का बस इतना ही अर्थ हुआ कि अपनी निष्कंप चेतना का भी ध्यान है। बाहर के संसार की घटनाएँ, उनका तो ध्यान है ही, उनके कारण हमारे जो चित्त पर जो लहरें उठ रही हैं, उनका भी ख्याल है। और साथ ही साथ चेतना का वह हिस्सा जो निष्कंप है, उसका भी ख्याल है। ऐसा समझें कि सागर की सतह है, सतह पर लहरें उठती हैं, गिरती हैं। लेकिन सागर की गहराई में कभी कोई लहर न आती है, न जाती है। कोई तूफान सागर की गहराई में नहीं पहुँचते। ठीक ऐसे ही हमारी आत्मा है। आत्मा की सतह का नाम है मन। मन में तरंगें उठती हैं, विचार आते हैं, भाव आते हैं जाते हैं, ये हमारे कंपन हैं। और मन की गहराई का नाम है आत्मा। वहाँ कोई कम्पन्न कभी नहीं होता।

तो एक ही घटना के दो हिस्से हैं एक गहराई है, एक सतह है। इन दोनों के प्रति एक साथ जागरुक होने का नाम साक्षी भाव है। इसलिए साक्षी भाव की साधना संसार में रहते हुए, अपने काम-धाम करते हुए की जा सकती है, कोई भी बाधा नहीं। हाँ, परमबोध की साधना के लिए कुछ विशेष माहौल चाहिए। शुद्ध बोध की अगर साधना करनी हो तो एक विशेष भूमिका निर्मित करनी होगी। क्योंकि शुद्ध बोध की अवस्था में सांसारिक घटनाओं का प्रभाव और कंपन चित्त पर नहीं पड़ना चाहिए। इसलिए समाधि की गहन अवस्था एक विशेष परिस्थिति में पैदा हो सकती है। लेकिन साक्षी भाव कहीं भी, किसी भी स्थिति में साधा जा सकता है।

हम ओशो के सन्यासियों के लिए इसलिए साक्षी भाव और भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि हमें ओशो का नया मनुष्य 'जोरबा दी बुद्धा' होना है। हमें संसार भी देखना है और अध्यात्म में भी गति करनी है। हमें संसार भी साधना है, और धर्म भी साधना है। हमें पदार्थ का भी ख्याल रखना है और परमात्मा का भी।

सामान्यत: लोग समझते हैं कि ओशो ने संन्यास को बड़ा सरल बना दिया। सच पूछो तो ओशो ने संन्यास को बहुत कठिन बना दिया। बड़ा आसान था संसार को छोड़कर भाग जाना, पत्नी और बच्चे छोड़कर भाग जाना। कौन नहीं चाहता? ऐसा शायद ही कोई व्यक्ति हो जिसके मन में यह ख्याल दस बीस बार जिन्दगी भर में न आ जाए कि घर-गृहस्थी छोड़ के, ये दुकान और संसार छोड़ के भाग जाऊँ। भाग जाने में कोई खूबी नहीं है। संसार में रहते हुए साधना करना असली चुनौती है।

तो खासकर हम ओशो के संन्यासियों के लिए साक्षी भाव और भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि हमें संसार में रहकर साधना करनी है और वहाँ साक्षी की ही साधना की जा सकती है। साक्षी की राह पर चलते हुए सम्बोधि तक पहुँच सकते हैं, बशर्ते कि साक्षी से भी हम आगे बढ़ें। यह प्रश्न ऐसा ही है जैसे कोई पूछे कि क्या पी॰एच॰डी॰ करने के लिए हाई स्कूल से पढ़ना जरूरी है। निश्चित रूप से हाई स्कूल अगर नहीं पढ़ेंगे तो कॉलेज कैसे पढ़ेंगे, यूनीवर्सिटी कैसे पढ़ेंगे? ग्रेजुएशन और पोस्ट ग्रेजुएशन कैसे होगा? पी॰एच॰डी॰ कैसे होगी? तो हाई स्कूल तो पढ़ना ही होगा। हाँ, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हाई स्कूल में अटक जाओ। कोई कहे कि ठीक, हमने तो हाई स्कूल पास कर लिया, अभी तक पी॰एच॰डी॰ क्यों नहीं हुई? पढ़ाई की एक प्रोसेस है, हाई स्कूल से और आगे बढ़ना होगा। धीरे-धीरे पी॰एच॰डी॰ तक पहुँच सकते हो। ठीक यही अवस्था

ध्यान की, समाधि की और सम्बोधि की है। ध्यान हाई स्कूल है, समाधि यूनिवर्सिटी है, ग्रेजुएशन और पोस्ट ग्रेजुएशन है सविकल्प और निर्विकल्प समाधि और उसके आगे सम्बोधि है, उसे समझें पी०एच०डी०। यदि कोई केवल ध्यान में अर्थात साक्षी भाव में अटक गया, तो उसने शुरुआत तो की पढ़ाई की, लेकिन पढ़ाई की अन्तिम मंजिल तक वह नहीं पहुँचा। और जिसने साक्षी भाव ही नहीं साधा उसने तो अभी पढ़ाई ही शुरू नहीं की, ABCD भी शुरू नहीं की। तो ध्यान, साक्षी भाव निश्चित रूप से बहुत महत्वपूर्ण हैं। लेकिन यह बात कहने में कहीं ऐसा न हो कि आप समझ लें कि यही यात्रा का अन्त है। चूंकि ओशो नए साधकों से चर्चा कर रहे थे, पूरे भारत में भ्रमण कर रहे थे तीस साल तक, हमेशा नए लोगों से चर्चा कर रहे थे। इसलिए वहाँ पर प्राइमरी स्कूल और हाई स्कूल की बात बहुत थी क्योंकि नए साधक को तो वहीं से शुरुआत करानी होगी। छोटे बच्चों से जब हम बात करेंगे तो उनको M.Sc. में जो गणित पढ़ाया जाता था, वह तो नहीं पढ़ायेंगे। उनको तो प्राइमरी स्कूल में जो सिखाया जाता है, वही सिखायेंगे। जब वे सीख जायेंगे तो हाई-स्कूल वाला गणित सिखायेंगे और धीरे-धीरे आगे बढ़ते चलेंगे। जब एडवांस साधकों से बात की जाती है तो तब समाधि की बात, तब सम्बोधि की बात आती है। लेकिन कालान्तर में एक भ्रम पैदा हो जाता है कि जैसे वह सद्गुरु केवल ध्यान पर ही जोर दे रहे थे, केवल साक्षी भाव पर जोर दे रहे थे, लेकिन हमें समझना होगा किस कॉन्टेक्स्ट में, किस भूमिका में जोर दे रहे थे। साक्षी भाव के बिना तो कोई यात्रा हो ही नहीं सकेगी। लेकिन कोई यह न समझ ले कि साक्षी भाव ही यात्रा का समापन है, कि ध्यान कर लिया तो सब कुछ हो गया। ध्यान सिर्फ शुरुआत है।

दूसरा प्रश्न : बहुत से लोग पूजा-पाठ करते हैं, मूर्ति पर ध्यान

लगाते हैं, चित्त की एकाग्रता साधते हैं। क्या यह ध्यान और समाधि के लिए सहयोगी नहीं है?

चाहें तो सहयोगी हो सकता है। जिसे बाहर तल्लीन होने की कला आ गई, वह अपने भीतर भी इसी भांति डूब सकता है। लेकिन अगर यह बात ख्याल में हो तो, वरना यही मूर्ति, यही पूजा उसके लिए बाधा बन जायेगी। मूर्ति है बाहर, मूर्ति है दृश्य, दृश्य पर अगर अटके तो भीतर नहीं जा पाओगे। लेकिन दृश्य का भी उपयोग किया जा सकता है। एक शान्त मूर्ति, समझो गौतम बुद्ध की मूर्ति को या महावीर की मूर्ति को आप देख रहे हैं, वह मूर्ति इस अनुपात में बनाई गई है कि देखने वाला देखते-देखते शान्त हो जाए। उसके चित्त के कंपन विलीन हो जाए। फिर थोड़ी देर बाद आँख बन्द कर लेना और अपने भीतर की निष्कंप चेतना में डूब जाना। तब तो यह उपयोगी हो जायेगा, लेकिन अगर उसका पिछला हिस्सा ख्याल में नहीं है। केवल अगला हिस्सा ही किया, केवल मूर्ति पर ही साधना करते रहे, मूर्ति पूजा ही करते रहे, मूर्ति को भोग लगाते रहे और अपने भीतर न डूबे तब वही मूर्ति अटकाने वाली बन गई, बाधक बन गई। तो मूर्ति पूजा सही है या गलत है, यह प्रश्न पूछना ठीक नहीं। हमें पूछना चाहिए कि मूर्ति पूजा के माध्यम से हम कैसे आगे बढ़े, ताकि मूर्ति पूजा अटकाने वाली न हो जाए।

महावीर ने एक नए शब्द का उपयोग किया है- सल्लीनता। तल्लीनता के ठीक विपरीत, तल्लीनता से मिलता-जुलता, लेकिन फिर भी उसके विपरीत, क्योंकि तल्लीनता में हम अपने से बाहर किसी ऑब्जेक्ट, किसी दृश्य में तल्लीन होते हैं, उसमें डूबते हैं। और सल्लीनता का अर्थ है अपने आत्मभाव में डूबना, स्वयं के भीतर अपनी ही चेतना में डूबना। दोनों में दिशा का फर्क है। भाव दशा एक-सी है। तल्लीनता में भी हम डूब जाते

हैं, सल्लीनता में भी डूबते हैं। लेकिन दोनों का क्षेत्र अलग–अलग है। तल्लीनता में हम स्वयं से बाहर किसी वस्तु, दृश्य या भाव में डूबते हैं, सल्लीनता हम स्वयं के भीतर अपने स्वभाव में डूबते हैं, हम आत्मरमण करते हैं। तो मूर्ति पूजा का भी उपयोग किया जा सकता है। लेकिन याद रखना, दृश्य से चलना द्रष्टा की तरफ, द्रष्टा से चलना साक्षी की तरफ, और साक्षी से आगे बढ़ना समाधि की तरफ, परम बोध की तरफ।

तीसरा प्रश्न है : साक्षी और साक्षी भाव में क्या अन्तर है कृपया इसे समझायें?

वह जो परम साक्षी है वह तो बुद्धत्व के बाद ही घटित होता है, बुद्धत्व के साथ ही घटित होता है या ऐसा कह लें कि परम साक्षी घटने का नाम ही बुद्धत्व है। लेकिन उससे पहले जो हम साधेंगे तो फिर वह क्या है? उसे हम एक दूसरा शब्द दे सकते हैं साक्षी भाव। एक हुआ परम साक्षी– फल के समान और एक हुआ साक्षी भाव– बीज के समान। यह बीज अंकुरित होगा, पत्तियाँ आयेंगी, शाखाएँ निकलेंगी, फूल लगेंगे, फल लगेंगे। जब फल आ जायेंगे उसका नाम है परम साक्षी। और जहाँ से हमने यात्रा शुरु की थी वह है साक्षी भाव। इसको थोड़ा फर्क समझना।

ठीक ऐसा ही सवाल एक और आया है कि आपने कहा कि पूर्ण तथाता संबोधि के साथ ही सम्भव है। तो क्या सम्बोधि के पूर्व तथाता भाव अथवा स्वीकार भाव इच्छाओं का दमन नहीं है?

पूर्ण स्वीकार भाव तो संबोधि के साथ ही घटेगा। लेकिन उस पूर्ण तक पहुँचने के लिए हमें अपूर्ण से शुरुआत तो करनी होगी। ऐसा समझें कि मैं एक अंधेरे कमरे में बैठा हुआ हूँ और मुझे प्रकाश की तरफ जाना है। बाहर सूरज की रोशनी है और मेरे कमरे में अन्धेरा है। जब मैं सूरज की तरफ

बढ़ना शुरू करूँगा, मेरे पहले कदम अंधेरे कक्ष में ही होंगे। धीरे-धीरे मैं दरवाजे की तरफ पहुँचूंगा, दरवाजे पर थोड़ी रोशनी है। थोड़ा और आगे बढ़ूँगा, बाहर पोर्च के बाहर बगीचे में आकर वहाँ पूर्ण रोशनी है।

तो यात्रा की सभी शुरुआत वहीं से होती है जहाँ हम खड़े हैं। हम खड़े हैं अस्वीकार भाव में, हम खड़े हैं मूर्छा के जगत में। अब यहाँ से साक्षी भाव की शुरुआत करनी होगी, यहाँ से स्वीकार भाव की शुरुआत करनी होगी। निश्चित रूप से यह स्वीकार भाव पूर्ण स्वीकार भाव नहीं होगा। यह साक्षी भाव पूर्ण साक्षी भाव नहीं होगा। लेकिन शुरुआत तो यहीं से होगी। पहले कुछ कदम अंधेरे कमरे में उठाने होंगे, अंधेरे में ही उठाने होंगे। कोई कहने लगे कि फिर उजाले में कैसे पहुँचेंगे, अंधेरे में चले तो। फर्क समझना, दो प्रकार का अंधेरे में चलना हो सकता है। एक अंधेरे में चलना ऐसा भी हो सकता है कि अंधेरे ही अंधेरे में भटकाता रहे, उस कक्ष के अन्दर ही मैं घूमता रहूँ। और एक अंधेरे में चलना दरवाजे की दिशा में हो सकता है। जो मुझे अन्ततः प्रकाश के जगत में ले जायेगा।

तो हमारी अपूर्णता से ही शुरुआत होगी। हमें जो थोड़ा बहुत स्वीकार भाव आता है, उसी को हम साधेंगे। क्रमशः हम दरवाजे की दिशा में, पूर्ण स्वीकार भाव की दिशा में चलेंगे। धीरे-धीरे हमारी मूर्छा कम होगी। अप्रमाद बढ़ेगा और हम पूर्ण साक्षी की दिशा में बढ़ने लगेंगे।

दूसरी बात पूछी है कि क्या सम्बोधि के पूर्व का तथाताभाव अर्थात स्वीकार भाव इच्छाओं का दमन नहीं है? नहीं, स्वीकार भाव में तो यह इन्क्लूडिड है, यह बात समाहित है कि अपनी इच्छाओं का, अपनी विल का, अपने संकल्प का भी स्वीकार। यदि आपने अपने ही विल पावर को अस्वीकार कर दिया तो आप बाहर के जगत में कैसे स्वीकार कर पायेंगे?

स्वीकार भाव का अर्थ है परिणाम का स्वीकार। आपने अपनी इच्छा के अनुसार जो करने जैसा लगा, अपने विवेक से, अपनी बुद्धि से सम्यक कर्म करते हुए पूरे संकल्प के साथ आपने किया, पूरे डिटरमिनेशन और कमीटमेंट के साथ आपने किया। लेकिन परिणाम तो आपके हाथ में नहीं है। परिणाम तो बहुत-सी बातों पर निर्भर करता है। परिणाम का स्वीकार वह तथाताभाव है।

संकल्प के वह विरोध में नहीं है। अपने संकल्प का, अपनी इच्छाओं का सम्मान करना सीखें, अपनी प्रकृति का, अपने स्वभाव का सम्मान करना सीखें। उनको स्वीकारें कि हाँ, मैं ऐसा हूँ, ऐसा है मेरा मन, ऐसी हैं मेरी इच्छाएँ, उनको पूरे करने के लिए प्रयास करें। लेकिन उस प्रयास के बाद फिर जो परिणाम आए उसका स्वीकार भाव, यह तथाता की शुरुआत होगी। तो यह संकल्प के खिलाफ नहीं है स्वीकार का भाव, बल्कि संकल्प तो इसमें इन्क्लूडिड है। नहीं तो आप स्वीकार किसका करेंगे? यदि आपने संकल्प पूर्वक कुछ कर्म किया ही नहीं है तो फिर आप किस परिणाम को स्वीकारेंगे? तो पूरे संकल्प के साथ, निर्णय के साथ चलें; अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए कर्म करें। लेकिन परिणाम या फल जो भी आए उसको स्वीकारें। यहाँ से स्वीकारभाव की शुरुआत होगी। अंधेरे कक्ष में चलना शुरू होगा। लेकिन क्रमशः शनैः शनैः प्रकाश के जगत में प्रवेश हो सकेगा।

चौथा प्रश्न : द्रष्टा और साक्षी भाव में क्या भेद है? क्या तटस्थ होना ही साक्षी भाव कहलाता है?

नहीं, तटस्थ होना साक्षी भाव नहीं है। तटस्थ होने में तो एक प्रकार की उपेक्षा, एक प्रकार की इनडिफ्रैंस है; जबकि साक्षी भाव में गहन प्रेम

की भावना छुपी हुई है। साक्षी भाव प्रेम के खिलाफ नहीं है, इनडिफ्रैंस या उपेक्षा प्रेम के खिलाफ है। लेकिन अक्सर इन दोनों में भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। बहुत लोग समझते हैं कि तटस्थ हो जाना ही साक्षी भाव है। यदि हम तटस्थ हो गए, इनडिफ्रेंट हो गए, उपेक्षापूर्ण हो गए तब तो सदा ही एक द्वन्द्व बना रहेगा। इस द्वन्द्व के पार हम कभी भी न जा सकेंगे, क्योंकि प्रेम जोड़ने वाला सेतु है। यदि साक्षी भाव में प्रेम का तत्व नहीं है तो यह कभी भी अद्वैत में नहीं ले जा सकेगा। दृश्य और द्रष्टा अलग-अलग ही रहेंगे एक-दूसरे के प्रति उपेक्षा पूर्ण। उनके मिलन का कोई सेतु निर्मित न हो सकेगा। और इसलिए तटस्थता कभी भी अद्वैत में नहीं ले जा सकती।

जिस साक्षी भाव की चर्चा ओशो कर रहे हैं, उस साक्षी भाव में प्रेम का भाव मिश्रित है। और साक्षी भाव स्वयं से भी पार ले जाने में सहयोगी होगा। अंततः वह अद्वैत में ले जाने में सक्षम होगा। क्योंकि उसमें जोड़ने वाला तत्व, जो ग्लूइंग मैटेरियल है- प्रेम- मौजूद है। तो साक्षी में उपेक्षा की भावना नहीं है। इस भ्रम को तोड़ना अगर आपके मन में हो तो। यह भ्रम बड़ा घातक है कि हमें जैसे कुछ लेना-देना नहीं। हमें क्या करना, हम तो तटस्थ हैं, इनडिफ्रेंट हैं, हम तो दूर से देख रहे हैं बस एक गवाह बनकर। नहीं, साक्षी भाव का यह अर्थ नहीं है। साक्षी भाव का अर्थ है हमें बहुत कुछ लेना-देना है, हमारा पूरा प्रेम और हमारा भाव इससे जुड़ा हुआ है। ऐसा समझें के एक बच्चा है और एक स्त्री उसे देख रही है दूर से बैठी हुई। और एक अन्य महिला और बैठी है जो उसकी माँ है। इन दोनों स्त्रियों का देखना अपने बच्चे को अलग-अलग प्रकार से है। जो माँ है, वह प्रेमपूर्वक देख रही है और जो दूसरी स्त्री है जिसे इस बच्चे से कोई लेना-देना नहीं है, वह उपेक्षापूर्ण नजरों से देख रही है। दोनों में भेद हो गया। उसकी माँ

का जो देखना है, उस देखने के अन्दाज को मैं कहूँगा, उसमें साक्षी भाव है। लेकिन जो महिला इनडिफ्रेंट होकर देख रही है, इस बच्चे से जिसका कोई नाता नहीं है, कोई रिश्ता नहीं है। इसमें साक्षी भाव नहीं है, यह महिला तटस्थ है। समझो कि एक बच्चा दीपक की लौ को पकड़ने के लिए आगे बढ़ता है। जो महिला उपेक्षापूर्ण बैठी है, वो चुपचाप बैठी देखती रहेगी, उसे क्या लेना-देना। बच्चे का हाथ जल जाए तो जल जाए। इससे कोई मतलब नहीं। वह कहेगी कि मैं तो साक्षी हूँ, मैं तो गवाह हूँ इस घटना की। मैं दूर से देख रही हूँ कि क्या हो रहा है। बच्चा आगे बढ़ रहा है, दीपक की लौ को पकड़ने वाला है, उसका हाथ जलने वाला है और मैं चुपचाप, शान्त इसे देख रही हूँ। जब मैं आपको शान्ति की बात कहता हूँ तो इस प्रकार की शान्ति की नहीं। और वह दूसरी महिला, जो इस बच्चे की माँ है, वह देखती है और दौड़ती है, उस बच्चे को बचाती है और वह मना करती है कि दीपक की लौ को नहीं पकड़ना। अगर वह नहीं मानता तो उसको डांटती भी है जोर से, कटु शब्दों भी प्रयोग करती है और अगर तब भी नहीं मानता तो एक-दो चांटे भी मारती है। लेकिन उसको दीपक की लौ नहीं पकड़ने देती। हम कहेंगे कि यह महिला तो बड़ी अशान्त है। कितने बेचैन हो गई छोटी सी घटना में, उत्तेजित हो गई, डांट रही है, क्रोधित हो गई, कितनी कठोर महिला है बच्चे को मार रही है। लेकिन मैं आपसे पूछना चाहूँगा कि इन दोनों महिलाओं में कौन कठोर है, कौन प्रेमपूर्ण है? कौन शान्त है, कौन अशान्त है? वह जो शान्त बैठी दिखाई पड़ रही है और बड़ी प्रेमपूर्ण जान पड़ती है, उसने बच्चे की पिटाई भी नहीं की, डांटा भी नहीं। बड़ी करुणावान जान पड़ती है। वह बिल्कुल पत्थर हृदय की कठोर महिला है। और इस बच्चे की माँ, जो इसको डांट रही है, मार रही है, गुस्सा हो रही है, यह प्रेमपूर्ण और करुणावान है। साक्षी और तटस्थता का भेद ऐसा ही

समझना और द्रष्टा और साक्षी का भी भेद खूब गौर से समझना। द्रष्टा यानि दृश्य को देखने वाला और साक्षी यानी इस द्रष्टा को देखने वाला। मुझे याद आता है ओशो ने एक बड़े ही प्यारे चुटकुले से इस बात को समझाया है। एक सभागार में सौन्दर्य प्रतियोगिता का प्रदर्शन हो रहा था। सुन्दर महिलाएँ स्टेज पर एक-एक करके आ रही थीं, जा रही थीं और सारे दर्शक एकटक-त्राटक करते हुए उन्हें देख रहे थे। एक आदमी सामने की ही पंक्ति में बैठा हुआ उल्टी तरफ मुंह करके बैठा, स्टेज की तरफ उसकी पीठ थी और वह अपना मुँह दर्शकों की तरफ किए हुए था। किसी ने उससे पूछा कि आप क्या कर रहे हैं? उसने कहा कि मैं मनोवैज्ञानिक हूँ। मैं अध्ययन कर रहा हूँ इस बात का कि सुन्दर स्त्रियों को देखकर पुरुषों के चेहरे पर किस प्रकार के हाव-भाव आते हैं। द्रष्टा और साक्षी को ऐसे समझना वे जो लोग स्त्रियों की तरफ देख रहे थे वे द्रष्टा और इनको जो देखने वाला था, जो इनका भी अवलोकन कर रहा था, वह साक्षी।

दृश्य और द्रष्टा दोनों के पार है साक्षी। वह एक तीसरा बिन्दु है। एक त्रिकोण को समझें, नीचे के दो कोण दृश्य और द्रष्टा के हैं और ऊपर का तीसरा कोण साक्षी का है, वह दोनों से बराबर दूरी पर है। लेकिन वह उपेक्षापूर्ण नहीं है। यह जो मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर रहा है, यह बड़े भाव से और तल्लीन होकर अध्ययन कर रहा है। यह उपेक्षापूर्ण नहीं है। इसको अपने अध्ययन में बड़ा रस है। इसको अपने मनोविश्लेषण में बड़ा प्रेम है, बड़ा भाव है तभी अध्ययन करने बैठा है। यह उपेक्षापूर्ण नहीं है। तो साक्षी भाव में उपेक्षा का तत्व, तटस्थता का तत्व नहीं है।

चौथा प्रश्न : साक्षी भाव साधने पर मेरा सिर भारी हो जाता है और सब रूखा-सूखा-सा लगने लगता है। ऐसा क्यों होता है? साक्षी भाव में मुझे सदा द्वैत बना रहता है और मैं लीन नहीं हो पाती। फिर भी

मैं साक्षी की साधना करूँ अथवा आत्मभाव में डूबूँ, जिसमें मुझे अत्यधिक आनन्द आता है?

यह प्रश्न उसी गलतफहमी से पैदा हुआ है। तटस्थता को साक्षी भाव मानने से यदि आप तटस्थ होकर अपने भीतर अवलोकन करेंगे तो निश्चित रूप से सिर भारी हो ही जाने वाला है। यह अवलोकन आपके लिए बोझिल हो जायेगा क्योंकि इसमें आपका कोई रस नहीं है, इसमें कोई प्रेम की धारा नहीं बह रही। आप उपेक्षा पूर्ण होकर अपने आपको देख रहे हैं। फिर इसमें द्वैत भाव सदा ही बना रहेगा। और जहाँ द्वैत है, वहाँ द्वंद है। और ध्यान में हमें पहुँचना है निर्द्वद्वंता की अवस्था में। इस बात को समझें कि रूखा-सूखा क्यों लगता है, यदि आप तटस्थ रहेंगे तो रूखा-सूखा तो लगेगा ही। वह महिला जो देख रही थी बच्चे को जलता हुआ, वह कहे कि मुझे मजा नहीं आ रहा है, कुछ आनन्द नहीं आ रहा है। आनन्द कैसे आयेगा? आनन्द तो प्रेम से आता है। बच्चे का हाथ जल गया और यह चुपचाप बैठी देखती रही। बच्चा रो रहा था, चीख रहा था और यह चुपचाप बैठी देख रही थी। वह पुकार रहा था कि मुझे बचाओ और यह महिला बोली कि मैं तो तटस्थ हूँ, मैं तो शान्त रहूँगी, मैं तो दूर से देखती रहूँगी। यह बच्चे के साथ द्वैत भाव बनाए हुए है। यह बच्चे को अपना नहीं मानती। बच्चे की तकलीफ इसकी अपनी तकलीफ नहीं है। यह साक्षी भाव नहीं है। फिर यह महिला कहेगी कि मैं तो देखते-देखते बड़ा रूखा-सूखा महसूस कर रही हूँ, मेरे सिर में भारीपन आ गया है। आ ही जायेगा। जहाँ आपको जीवन्त होना था, रस मग्न होना था, वहाँ आप रूखी-सूखी हो गईं। यह साक्षी भाव नहीं है, यह तटस्थता है। और आपका यह निष्कर्ष बिल्कुल ठीक है कि इस प्रकार के साक्षी भाव में अर्थात् तटस्थ भाव में सदा द्वैत बना रहता है और यह लीन नहीं होने देता। तटस्थ व्यक्ति कभी लीन नहीं हो सकता। कबीर ने

बड़ी मजाक उड़ाई है इस प्रकार का साक्षी भाव साधने वालों की। कबीर ने कहा है -

'जिन खोजा तिन पाइयां, गहरी पानी पैठ।
मैं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ॥'

मैं तट पर बैठी रही, मैं पागल, मैं किनारे ही बैठी रही और जिन्होंने भी पाया, उन्होंने गहरे पानी में डूबकर ही पाया। सागर के मोती तलहटी में मिलते हैं जो किनारे ही बैठ गया सागर के, वह मोती प्राप्त नहीं कर सकेगा। कबीर के इस वचन पर गौर करना- **'मैं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ'**, और किनारे बैठे-बैठे तुम बोर हो जाओगे, थक जाओगे, परेशान हो जाओगे। फिर कहोगे कि हमारा सिर भारी हो गया, रूखा-सूखा सा लग रहा है। सागर के तट पर, रेत के मैदान में बैठे-बैठे रूखा-सूखा तो लगेगा ही। पानी में उतरो तो थोड़ी आद्रता आए, थोड़ा गीलापन आए, थोड़ा रस आए। रेत में तो रूखा-सूखा लगेगा ही। वहाँ तो लीन नहीं हो सकते और अच्छा है कि तुम रेत में लीन नहीं हो जाते। नहीं तो वहाँ कब्र बन जायेगी अगर रेत में लीन हो जाओ। नहीं, पानी में उतरो, बहुत खजाने खोजने हैं। पानी में गहरे उतरना होगा। आप पूछते हैं कि क्या फिर भी मैं साक्षी की साधना करूँ अथवा आत्मभाव में डूबूँ, जिसमें मुझे अधिक आनन्द आता है। आप आत्मभाव में डूबें, सल्लीनता साधें। वह सल्लीनता ही समाधि है। साक्षी भाव का ठीक-ठीक अर्थ समझें और तब सल्लीनता में डूबें।

पाँचवा प्रश्न : 'ध्यान योग, प्रथम एवं अन्तिम मुक्ति' में ओशो कहते हैं कि साक्षी पर्याप्त है। फिर आप समाधि की बात क्यों करते

हैं?

ओशो ने किस सन्दर्भ में कहा कि साक्षी पर्याप्त है, इस बात को समझना। पहली बात साक्षी पर्याप्त है यह अधूरा वचन है। हाँ, सम्पादक महोदय ने यह अधूरा वचन सुना है टाइटल, शीर्षक बनाने के लिए 'साक्षी पर्याप्त है'। यह ओशो का वचन नहीं है। ओशो का पूरा वचन है कि मन के अन्धकार को मिटाने के लिए साक्षी पर्याप्त है। यह नहीं कहा कि समाधि में डूबने के लिए साक्षी पर्याप्त है। यह नहीं कहा कि परमात्मा को पाने के लिए साक्षी पर्याप्त है। पूरा वाक्य लो, उसको आऊट ऑफ कॉन्टेक्स्ट मत करो। पूरा वचन है – 'मन के अंधकार को मिटाने के लिए, मन के पार जाने के लिए साक्षी पर्याप्त है। यह बात बिल्कुल ही ठीक। मन के बाहर जाने के लिए साक्षी पर्याप्त है। लेकिन उसके पार और भी बहुत कुछ है। साक्षी के भी पार जाना है। ओशो तो यहाँ तक कहते हैं कि बुद्धत्व के भी पार जाना है। ओशो की एक किताब का नाम है 'बियॉन्ड एनलाइटनमैंट – बुद्धत्व के पार। तो ध्यान के पार, साक्षी के पार है समाधि, समाधि के पार है संबोधि या बुद्धत्व और बुद्धत्व के भी पार है कैवल्य और निर्वाण। जाना तो वहाँ तक है।

आपका यह कहना कि ओशो कहते हैं कि साक्षी पर्याप्त है, यह बात गलत है। माना कि किताब में यह एक शीर्षक है एक चैप्टर का। लेकिन यह अधूरा शीर्षक है। ओशो की पूरी बात को पूरे कांटेक्स्ट में लें। आप पूछती हैं कि फिर आप समाधि की बात क्यों करते हैं? आश्चर्य की बात, आपको ख्याल नहीं आता कि ओशो समाधि की बात करते हैं। ओशो की सबसे प्रसिद्ध किताब का नाम है– 'संभोग से समाधि की ओर'। समाधि की बात नहीं कर रहे? ओशो की एक और किताब का नाम है– 'वेदान्ता

सेवन स्टेप्स टू समाधि'। क्या यह समाधि की चर्चा नहीं है? एक अन्य किताब का नाम है 'समाधि के द्वार पर', एक अन्य किताब का नाम है 'समाधि के सप्त द्वार', एक किताब का नाम है 'समाधि कमल'। कबीर के ऊपर ओशो के प्रवचनों का शीर्षक है 'सहज समाधि भली'। एक अन्य प्रवचन माला का नाम है 'शून्य समाधि'। एक पुस्तक का शीर्षक है 'सम्बोधि के क्षण'। आप कैसे कहते हैं कि ओशो ने समाधि के ऊपर जोर नहीं दिया? सच पूछो तो ध्यान के ऊपर कुल दो किताबें हैं- 'ध्यान योग प्रथम एवं अंतिम मुक्ति' और एक है 'ध्यान दर्शन'। बाकी की तो सारी किताबें समाधि के ही बारे में हैं। यह आपकी गलतफहमी है कि ओशो समाधि पर जोर नहीं दे रहे। साक्षी यानि शून्यता, मन की शून्यता। हाँ, मन को शून्य करने के लिए तो साक्षी पर्याप्त है। ओशो की दो किताबों का और नाम मुझे याद आता है, एक किताब है 'शून्य की नाव' अर्थात् साक्षी की नाव, और एक किताब का नाम है 'शून्य के पार' अर्थात् साक्षी के पार।

ओशो बार-बार याद दिलाते हैं कि ध्यान की नाव में बैठना भी है और उतरना भी है, भूल मत जाना उतरना। अगर तुम नाव में ही बैठे रहे तो भी यात्रा नहीं हो पायेगी, उस पार नहीं पहुँच पाओगे या बिल्कुल उस किनारे पहुँच कर भी चूक जाओगे। नाव में बैठना भी है, जब इस किनारे हो और नाव से उतरना भी है जब उस किनारे पहुँचो। तो 'शून्य की नाव' यानि साक्षी की नाव और 'शून्य के पार' यानि साक्षी के पार। साक्षी के पार क्या है? उसी का नाम समाधि है।

छठवां प्रश्न : कहा जाता है कि समस्त ध्यान विधियों का सार साक्षी भाव है। क्या ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, तन्त्रयोग और

हठयोग का भी सार साक्षी भाव है? फिर इतने प्रपंच और विधि-विधानों की क्या जरूरत है? क्या साक्षी भाव सीधे ही नहीं साधा जा सकता?

यदि साध सको तो सौभाग्यशाली हो। फिर किसी प्रपंच की जरूरत नहीं है। ओशो ने एक बड़े ही सुन्दर उदाहरण से समझाया है, वही उदाहरण मैं आपसे कहूँ। महागीता के एक प्रवचन में ओशो कहते हैं कि 'समझो एक वैद्य के पास एक मरीज आया। वैद्य ने अपनी जड़ी-बूटी पीसकर, पाऊडर बनाकर उसको दी और कहा कि इसको शहद के साथ मिलाकर चाट लेना। वह आदमी कहने लगा कि हम तो शुद्ध शाकाहारी हैं। हम तो शहद लेते नहीं, शहद कीट-पतंगों से, मधुमक्खियों से बनता है। वैद्य ने कहा कि कोई बात नहीं, दूध में मिलाकर पी जाना। वह मरीज कहने लगा कि क्षमा करें, दूध का तो इन्तजाम हमारे पास है नहीं, गाय-भैंस कुछ है नहीं, कुछ और बताएँ। उसने कहा कि कोई बात नहीं, छोड़ो शहद और दूध, पानी में मिलाकर पी जाना। यदि वह व्यक्ति कहने लगे कि क्या मैं इस दवा को ऐसे ही खा सकता हूँ। निश्चित रूप से वैद्यराज कहेंगे कि ठीक, अगर तुम ऐसे ही गुटक सको तो दवा को यूँ ही गुटक जाओ। न शहद की जरूरत है, न दूध की जरूरत है, न पानी की जरूरत है। यह तो माध्यम थे जिसमें घोलकर दवाई तुम्हारे पेट में पहुँचानी थी। दवाई किसी भी भांति पहुँच जाए। आप पूछते हैं कि इतने प्रपंच और विधि-विधानों की क्या जरूरत है। क्या साक्षी भाव सीधे ही नहीं साधा जा सकता? निश्चित रूप से साधा जा सकता है। परम सौभाग्यशाली हैं वे लोग जो सीधे ही उसे साध लें। अष्टावक्र ने जनक से कहा था कि साक्षी हो जाओ और जनक हो गए साक्षी। उन्होंने कोई सवाल नहीं उठाया कि कैसे और उन्होंने कहा कि हे प्रभु! मेरा मुझको

नमस्कार! अहो! मैं परम साक्षी, मैं ही भागवत स्वरूप, मैं शुद्ध बुद्ध चैतन्य हूँ, अहो! उन्होंने अपने ही पैर छू लिए। उन्होंने पूछा ही नहीं था अष्टावक्र से कि कैसे साक्षी भाव साधें। उन्होंने नहीं पूछा कि पानी में मिलाके, कि दूध में मिलाके, कि शहद में मिलाके। अष्टावक्र ने दवाई दी और जनक ने उसे गुटक ली। यदि तुम ऐसा कर सको तो ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, तन्त्र और हठयोग, किसी की भी जरूरत नहीं है। निश्चित रूप से उन सभी ध्यान विधियों का सार साक्षी भाव ही है। जब तुम कर्म के साथ साक्षी को जोड़ देते हो तो तुम कर्मयोगी बन गए। जब तुमने अपनी इन्द्रियों की संवेदनशीलता के साथ, भोग के साथ साक्षी को जोड़ दिया तो तुम तान्त्रिक हो गए। जब तुमने अपनी श्वासों के साथ साक्षी भाव को जोड़ दिया तुम हठयोगी हो गए। जब तुमने अपने हृदय की भावनाओं के साथ, प्रेम के साथ साक्षी को जोड़ दिया तुम भक्त बन गए। जब तुमने अपने ज्ञान के साथ, विचारों के साथ, मन के साथ साक्षी को जोड़ दिया तो तुम ज्ञानयोगी बन गए। और जब इन पांचों में से तुमने चुनाव न किया कुछ भी, तुम बस साक्षी ही हो गए, जब जैसा समय आया वैसे। कर्म करने का समय आया तो कर्म के प्रति, भाव में डूबे तो भाव के साथ साक्षी, कुछ नहीं कर रहे थे सांस चल रही थी सांस के साक्षी, भोजन कर रहे थे स्वाद के साक्षी, तुम बस साक्षी हो गए। विचार चलने लगे मन में, विचारों के साक्षी हो गए। जब तुमने कोई भी चुनाव न किया तब तुम छठवें बिन्दु पर पहुँचे, जिसे राजयोग कहते हैं। राजयोग कोई अपने आप में अलग से, स्पेसिफिक, विशेष मार्ग नहीं है। राजयोग सभी मार्गों का समन्वय है।

एक मित्र ने पूछा है कि राजयोग क्या है। राजयोग की विधियाँ किस भांति समाधि में ले जाने में सहयोगी हैं? राजयोग अपने आप में कोई योग

नहीं। ऐसा कहना चाहिए– समस्त मार्गों का समन्वित रूप। एक प्रश्न और इसी सन्दर्भ में है, उसको भी समझें तो आसान होगा।

सातवां प्रश्न : कृष्णमूर्ति कहते हैं - च्वाइसलैस अवेयरनैस में जियो, जीसस कहते हैं - डू नॉट जज। हम बिना निर्णय लिए, बिना चुनाव किए कैसे जी सकते है?

'च्वाइसलैस अवेयरनैस' और 'डू नॉट जज' की बात ध्यान के बारे में है, बाहर के जगत के बारे में नहीं। अब यह मत कहने लगना कि एक तरफ थाली में रोटी और लड्डू रखे हुए हैं और दूसरी तरफ कंकड़–पत्थर रखे हुए हैं और कहा गया है– डू नॉट जज और च्वाइसलैस अवेयरनैस। तो क्या पत्थर उठाकर खा जायेंगे? बाहर के संसार में तो चुनाव करने पड़ेंगे। निर्णय करने पड़ेंगे। कृष्णमूर्ति पत्थर तो नहीं खाते थे, मिष्ठान ही खाते थे, रोटी ही खाते थे, प्लेट तो नहीं खा जाते थे उठाके; यह कैसी च्वाइसलैस अवेयरनैस। आप तो भेदभाव कर रहे हैं स्टील की प्लेट और गेहूँ की रोटी में, रोटी–रोटी खा ली और प्लेट छोड़ दी। नहीं च्वाइसलैस अवेयरनैस का यह मतलब नहीं है। च्वाइसलैस अवेयरनैस का मतलब है कि मैं हठयोगी, तान्त्रिक, भक्त, कर्मयोगी अथवा ज्ञानयोगी होने में चुनाव नहीं करूँगा। जब जैसी परिस्थिति होगी, जब जीवन जो दृश्य दिखायेगा, मैं उसी में साक्षी हो जाऊँगा। अगर कर्म करने का मौका आया तो कर्म का साक्षी हो जाऊँगा, विचार करने का समय है तो विचार का साक्षी हो जाऊँगा, भावनाओं में डूबा हूँ तो भावनाओं का साक्षी, कुछ नहीं तो सांसों का साक्षी, भोग का साक्षी। इसमें कोई चुनाव नहीं करूँगा, कोई जिद नहीं करूँगा कि मैं तो कर्मयोगी हूँ, मैं भाव–वाव में नहीं डूबूंगा। कि मैं तो भक्त हूँ, मैं कोई कर्म नहीं करूँगा, मैं तो बस अपने आलस्य में पड़ा रहूँगा, भक्ति भाव में डूबा रहूँगा। कि मैं तो ज्ञानी हूँ ज्ञान में मुझे रस है, कर्म–वर्म में अपना रस नहीं

है। अगर तुमने चुनाव किया तो तुमने एक स्पेसिफिक मार्ग, एक विशिष्ट मार्ग को चुना।

तो नीचे के पाँच चक्रों से संबन्धित जो पाँच मार्ग मैंने कहे, वे मूलाधार, स्वादिष्ठान, मणिपुर, अनाहद और विशुद्ध चक्र से संबन्धित हैं। जब तुमने उनमें से किसी एक मार्ग को चुना तो वह 'च्वाइसफुल अवेयरनैस' हुई और जब तुमने चुना ही नहीं, तुमने परिस्थितियों पर छोड़ दिया, जब जैसा अवसर होगा, जीवन जो दृश्य दिखायेगा मैं उसी में साक्षी भाव को जोड़ लूँगा। तब तुम राजयोगी हो गए। कृष्णमूर्ति की बात-च्वाइसलैस अवेयरनैस की इस साक्षी को पकड़ने की है, बिना किसी चुनाव के। और जब जीसस कहते हैं कि कोई मूल्यांकन मत करो, तब वे यही कह रहे हैं कि इन पाँच चीजों में से तुम मूल्यांकन मत करो, इसमें कोई ऊपर और नीचे नहीं है। हमेशा से विवाद रहा है। भक्त हमेशा कहते रहे हैं कि भक्ति ही सर्वोपरि है। कर्मयोगी कहते रहे कि कर्मयोग सर्वोपरि है, भक्ति तो पागलपन है, यह नाचना-कूदना, उछलना, संगीत इत्यादि। सब अपने आपको ऊपर मानते रहे और दूसरों को नीचे मानते रहे। जीसस कह रहे हैं मूल्यांकन करने की जरूरत ही नहीं। भाव भी तुम्हारे हैं, भोग भी तुम्हारा है, विचार भी तुम्हारे हैं, शरीर की क्रियायें भी तुम्हारी हैं, ये श्वांस और प्राण भी तुम्हारे हैं, इसमें चुनाव क्या करना। कोई निर्णय मत करो, कोई चुनाव न करो।

अंग्रेजी के तीन-चार शब्द और मैं उपयोग करना चाहूँगा, जिससे च्वाइसलैस अवेयरनैस की बात ठीक-ठीक समझ में आए। एक है ऑब्जेक्टिव अवेयरनैस। जब हम अपने से बाहर किसी दृश्य के प्रति, ऑब्जेक्ट के प्रति जागे हुए हैं। एक है सब्जेक्टिव अवेयरनैस, जिसे मैं कह रहा था संलीनता या बोध। जिसमें हमें केवल स्वयं के होने का बोध है।

एक में विषय का ज्ञान है, दूसरे में विषयी का ज्ञान है। और इन दोनों के मध्य में है साक्षी भाव या च्वाइसलैस अवेयरनैस, जिसमें ऑब्जेक्टिव अवेयरनैस + सब्जेक्टिव अवेयरनैस, विषयगत ज्ञान और विषयगत ज्ञान दोनों का मिलन है। तो साक्षी भाव मध्य में है। इसमें ऑब्जेक्टिव अवेयरनैस भी है और सब्जेक्टिव अवेयरनैस भी है। बाहर जो घटना घट रही है उसका भी पता चल रहा है, उसका मेरे चित्त पर क्या प्रभाव पड़ा, उसका भी पता चल रहा है और मेरे भीतर जो निष्कम्प चेतना है उसका भी पता चल रहा है।

अच्छा हो हम एक दूसरा शब्द उपयोग करें, ओशो ने जिसका बहुत प्रयोग किया है– समग्रता, समग्ररूपेण जागरुक, टोटल अवेयरनेस। च्वाइसलैस अवेयरनैस एक नैगेटिव टर्म है और उसको समझना जरा कठिन है। इसका रिप्लेसमेंट हम कर सकते हैं टोटल अवेयरनैस में– सम्पूर्ण रूप से जागरुक। सम्पूर्ण जागरुकता में सब कुछ इन्क्लूडिड हो गया, बाहर के संसार में घट रही घटनाएँ भी, उनका हमारे चित्त पर पड़ रहा प्रभाव भी, चित्त में उठी लहरें भी और चेतना की वह गहराई जो लहरों से अप्रभावित है – वह भी। सम्पूर्ण जागरुकता, सब कुछ के प्रति जागरुक। यह ज्यादा अच्छा शब्द है, इसको समझना ज्यादा आसान है। समग्र रूपेण जागरुक। चुनाव रहित जागरुकता, नेगेटिव टर्म होने में समझना जरा कठिन है।

जिन मित्र ने पूछा है कि राजयोग की विधियाँ किस प्रकार समाधि में ले जाने में सहयोगी हैं? राजयोग की विधियाँ तो कोई विशेष नहीं हैं। लेकिन फिर भी कुछ विधियाँ जो ऊर्जा को आज्ञा चक्र पर ले आती हैं, उनको राजयोग का सहयोगी माना जा सकता है। उदाहरण के लिए ओशो की ध्यान विधियों में त्राटक ध्यान, दर्पण ध्यान, मण्डल ध्यान, गौरी शंकर ध्यान, शिव नेत्र ध्यान, सडन स्टॉप – अचानक रुक जाने की विधियाँ, ये

ऊर्जा को आज्ञा चक्र पर लाती हैं। और ऊर्जा आज्ञा चक्र पर आ जाए तो नीचे के पाँचों चक्र समन्वित हो जाते हैं, एक ऑर्डर में आ जाते हैं। उस ऑर्डर की वजह से, उस आज्ञा की वजह से ही छठवें चक्र को आज्ञा चक्र कहा जाता है। राजयोग इस आज्ञा चक्र से संबन्धित है। यहाँ पर साक्षी सधता है। फिर कुछ भी हो कर्म हो कि भोग, श्वांस हो कि भाव कि विचार या कुछ और या इनमें से कुछ भी नहीं, कुछ भी न हो तब भी साक्षी। यह आज्ञा चक्र की घटना है। और इसलिये वे विधियाँ जो आज्ञाचक्र पर ध्यान को लाती हैं, सूरज की ओर त्राटक करना, किसी दीपक की लौ पर त्राटक करना या गुरु के चेहरे पर त्राटक करना या दर्पण में स्वयं के ही चेहरे पर त्राटक करना ये सारी विधियाँ आज्ञा चक्र को सक्रिय करती हैं और साक्षी भाव को मजबूत करती हैं। इनको हम राजयोग की सहयोगी विधियाँ कह सकते हैं।

आठवां प्रश्नः क्या साक्षी भाव के बगैर भी समाधि में प्रवेश सम्भव है? क्या इसके बिना बुद्धत्व प्राप्ति सम्भव है?

नहीं, साक्षी भाव के बिना समाधि में प्रवेश सम्भव नहीं, सम्बोधि तो बिल्कुल ही सम्भव नहीं। साक्षी भाव से तो गुजरना ही होगा। लेकिन दो प्रकार के लोग हो सकते हैं - एक वे जिन्होंने मुख्य रूप से पहले साक्षी की साधना की, फिर क्रमशः उन्होंने आगे कदम उठाया, समाधि में गए और फिर एक कदम उठाया, सम्बोधि में गए और अन्ततः सम्बोधि के भी पार चले गए। दूसरे लोग वे हो सकते हैं जिन्होंने सीधे-सीधे जान बूझकर तो साक्षी की साधना नहीं की, उन्हें साक्षी का ख्याल नहीं था, उन्होंने सीधे ही समाधि को साधा। लेकिन इस प्रक्रिया में वे भी साक्षी भाव से गुजरे। यद्यपि उन्होंने उसको नोट नहीं किया। वह उनके ख्याल में नहीं आया। ऐसा समझे कि आप एक पैसेन्जर ट्रेन से गए और छोटे-छोटे स्टेशनों पर

आप रुके और आप सुपर फास्ट राजधानी एक्सप्रेस से गए तो आप गुजरे तो उन छोटे स्टेशनों से लेकिन आपको पता नहीं चला, आप सीधे जा के समाधि के स्टेशन पर रुके। बीच में धारणा के और ध्यान के स्टेशन गुजर गए। लेकिन गुजरे तो आप उनसे, रास्ता तो वही था। तो यह कहना तो ठीक नहीं कि साक्षी भाव के बिना भी समाधि में प्रवेश सम्भव है, उसके बिना तो सम्भव नहीं है, बुद्धत्व भी सम्भव नहीं है। हाँ, लेकिन यह हो सकता है कि उन छोटे स्टेशनों की परवाह किए बगैर आप तीव्र गति से वहाँ से गुजर गए। ऐसा समझें कि यहाँ ओशो मन्दिर में आपको प्रवेश करना है। बाहर बगीचे में आप खड़े हैं, आप पूछें कि क्या तुम्हें दरवाजे से गुजरना जरूरी है। दरवाजे से तो गुजरना जरूरी है। कुल एक ही मार्ग है ओशो मन्दिर में भीतर आने का– वह है दरवाजा। तो दरवाजे से ही आप भीतर आयेंगे हाँ ये हो सकता है कि दरवाजे का आपको ख्याल न हो। आप सीधे मन्दिर में प्रवेश को उत्सुक हों और आप तीव्र गति से दरवाजे से गुजर गए। आपने दरवाजे की नोटिस भी नहीं ली। आपने उस पर गौर नहीं किया, यह सम्भव है। लेकिन बिना द्वार से प्रवेश किए मन्दिर में प्रवेश सम्भव नहीं है।

नौवां प्रश्नः साक्षी, सुरति और समाधि में क्या ज्यादा महत्वपूर्ण एवं साधने योग्य है?

फिर मूल्यांकन शुरू हो गया। तीनों ही साधने होंगे, कोई शॉर्टकट नहीं है। साक्षी भी साधो, समाधि भी साधो और परमात्मा के स्मरण में, उसके सुमिरण और सुरति में भी जियो। ये सभी बातें जरूरी हैं। साक्षी इसमें प्राथमिक है। समाधि उसके बाद है और सुरति उसके भी बाद है। लेकिन जैसा मैंने कहा कि शॉर्टकट तो नहीं होता। लेकिन फिर भी कोई व्यक्ति हो सकता है कि समाधि की तरफ सीधा जाए, यह सम्भव है। ओशो ने 'जिन खोजा तिन पाइयां' नामक प्रवचन माला में इस तरफ इशारा किया है कि

अभी मैं जो विधि बता रहा हूँ ध्यान की, वह बड़ा लम्बा रास्ता है। एक और विधि है बहुत संक्षेप में उसमें सीधे ही ब्रह्म भाव में डूब जाते हैं। न कोई कुण्डली जागरण की जरूरत है, न कोई प्राण ऊर्जा जगाने की जरूरत है, न साक्षी साधने की जरूरत है। सीधे ही परमात्मा के कुण्ड में डुबकी लग जाती है। कुण्डली जगाने की जरूरत नहीं पड़ती। परमात्मा के विशाल ऊर्जा कुण्ड में सीधे ही विलीन हो जाते हैं। समाधि के कुछ साधक, कुछ नए मित्र आ जाते हैं ध्यान समाधि में, जिन्होंने पहले कभी साक्षी भाव की साधना भी नहीं की। नौ दिनों में वे भी समाधि को पा लेते हैं और जिन्होंने पिछले 25 साल से साक्षी को साधा है, वे भी नौ दिनों में समाधि में पहुँच जाते हैं। लेकिन जिन लोगों ने साक्षी साधा है उन्होंने उस पर गौर किया। उनका विशेष रूप से उस पर ध्यान गया है। और नए साधक जो आए जो सातवें दिन समाधि में ही प्रवेश कर गए, उनको साक्षी भाव का इतना पता नहीं चला यद्यपि साक्षी भाव से वे भी गुजरे।

तो ऐसा ही समझना साक्षी, सुरति और समाधि सभी कुछ महत्वपूर्ण है और सभी कुछ साधना है। कोई व्यक्ति चौबिस घंटे समाधि में तो नहीं हो सकता, लेकिन चौबिस घंटे सुरति में हो सकता है। सुरति समाधि के बाद की अवस्था है। और साक्षी भाव समाधि के पूर्व की अवस्था है। तो साक्षी भाव में भी बहुत लम्बे समय तक हुआ जा सकता है, सुरति में भी लम्बे समय तक हुआ जा सकता है, समाधि में तो समय का बन्धन होगा। घंटे, दो घंटे, तीन घंटे, कोई कितना समाधि में डूबेगा? और विशेषकर हम ओशो सन्यासियों के लिए तो सम्यक रूप से ही समाधि में जाना होगा। हमें अपनी दुकान भी चलानी है, घर-गृहस्थी भी देखनी है, व्यवसाय भी करना है, बाल-बच्चे भी पालने हैं। तो समाधि की एक सीमा होगी। लेकिन साक्षी और सुरति की

कोई सीमा नहीं होती। तो जब तक समाधि नहीं लगी तब तक साक्षी भाव को साधो, समाधि के बाद सुरति भाव में डूबो और यदि कभी समाधि नहीं लग पाती, सुरति नहीं जाग पाती, तो कोई बात नहीं। फिर से साक्षी भाव से शुरू करो।

दसवां प्रश्न : ओशो ध्यान पर ज्यादा जोर देते हैं, लेकिन ओशो धारा में राम-नाम श्रवण पर ज्यादा जोर है। ऐसा विरोधाभास क्यों?

आपके भ्रम की वजह से। ओशो ध्यान पर जोर दे रहे हैं। जैसा मैंने कहा था कि प्राइमरी स्कूल के बच्चों को प्राइमरी स्कूल की बातें बतायेंगे। इसलिए हमें उतना ही समझ में आता है, हम समझ रहे हैं कि केवल इसी पर जोर दे रहे हैं। नहीं, ओशो हायर मैथमैटिक्स की भी बात कर रहे हैं। चूँकि हमें वह समझ में नहीं आता, इसलिए हमें पता ही नहीं चलता कि उस पर जोर दे रहे हैं। प्रवचनों की तो बात छोड़ो, मैं आपको ओशो की कुछ किताबों के नाम बताता हूँ। जिससे आपको पता चलेगा कि राम नाम श्रवण पर उनका कितना जोर है। किताबों के शीर्षक से ही समझना। शीर्षक में तो ओशो ने वे शब्द चुने हैं जो उनको अति प्रिय हैं, जिन पर बहुत ही उनकी ऐम्फेसिसस है। समझो पल्टू दास के पचास पदों पर उन्होंने व्याख्यान लिए। इन पचास पदों में से आधी लाइन उन्होंने चुनी किताब का शीर्षक रखने के लिए। निश्चित रूप से यह आधी लाइन उनको बहुत ही प्रिय होगी। जरा सुनो गौर से, मैं कुछ नाम तुम्हें सुनाता हूँ, ओशो की किताबों के - 'एक ओंकार सतनाम'- नाम की बात आई, वह एक है, वह ओंकार स्वरूप है, यही उसका सच्चा नाम है। 'नाम सुमिर मन बावरे' - हे बावरे, हे पागल मन, उस नाम का सुमिरन कर। 'अरी मैं तो नाम के रंग छकी'- ओशो ने कभी नहीं कहा

कि अरी मैं तो ध्यान के रंग छकी। ध्यान से कोई नहीं छकता। ध्यान से ऊब पैदा हो जायेगी। ध्यान से सिर में दर्द होने लगेगा। अगर तुमने तटस्थता साध ली ज्यादा, तो बिल्कुल रूखे-सूखे हो जाओगे। ओशो ने बार-बार चेताया है कि रूखे-सूखे मत हो जाना। तृप्ति कहाँ से आयेगी? यह छकने की घटना कहाँ घटेगी? 'अरी मैं तो नाम के रंग छकी' नाम के श्रवण में डूबोगे, सुनोगे। 'राम दुवारे जो मरे' - ये किस राम की बात कर रहे हैं? अयोध्या वाले राम? उनके द्वार पर जाकर मरना होगा? नहीं, भीतर जो राम-नाम की गूंज हो रही है, उस द्वार पर जाकर अहंकार को मरना होगा। 'नहीं राम बिन ठांव' ओशो की किताब का प्यारा शीर्षक - राम के बिना कोई ठांव नहीं है। 'नाम' या 'राम' या 'ओम्', ये भीतर की तरफ इशारा हैं। अंग्रेजी की तीन किताबों का शीर्षक ओशो ने हिन्दी में रखा। उस समय मैं पब्लिकेशन डिपार्टमेंट में काम करता था, हमारे विभाग की तरफ से ओशो को खबर भेजी गई कि इन किताबों का शीर्षक बदल दीजिए। क्योंकि इनकी बिक्री ही नहीं होगी। जरा सोचो, यूरोप के किसी बुक स्टॉल में किताब रखी है 'हरि ओम् तत्सत्', 'ओम् मणि पद्मे हुम्', 'ओम् शान्ति-शान्ति-शान्ति'। इसको कौन खरीदेगा? इसका तो अर्थ ही समझ में नहीं आया? लेकिन ओशो ने कहा कि नहीं, ये नाम बदले नहीं जा सकते। क्यों नहीं बदले जा सकते? क्योंकि उनमें ओम् आ रहा है। 'हरि ओम तत्सत्'- वह परमात्मा ओम् स्वरूप है। 'ओम् शान्ति-शान्ति-शान्ति' - जीवन में शान्ति आती है ओम् में डूबने से। 'ओम् मणि पदमे हुम्'। ओशो ने एक किताब में 'ओम मणि पदमे हुम्' की इतनी चर्चा की, इतनी चर्चा की कि एडिटर को समझ में नहीं आया स्वामी अमृतो को कि इस किताब का क्या शीर्षक रखें। उन्होंने इसका शीर्षक रख दिया 'नोट्स ऑफ ए

मैड मैन'- एक पागल आदमी की बातें। इससे यह पता नहीं चलता कि ओशो पागल हैं, इससे यह पता चलता है कि सम्पादन करने वाला व्यक्ति निश्चित रूप से अति मूढ़ है, महामूढ़ है। उसको ओशो की इतनी प्यारी बात समझ में नहीं आई। ओशो कह रहे हैं कि मैं चेतना की परम ऊँचाई पर हूँ, जहाँ एक गुंजार हो रही है। जैसे हजारों मधुमक्खियों का दल गुजर रहा हो ऐसी गूंज हो रही है। मैं चेतना के सर्वोच्च शिखर पर हूँ- 'ओम् मणि पदमे हुम्'। स्वामी अमृतो को समझ में नहीं आया कि कहाँ का चेतना का शिखर, कहाँ की मधुमक्खियों की आवाज, कैसा 'ओम मणि पद्मे हुम्!'। ओशो एक ही एक बात कहे जा रहे हैं बार-बार, बार-बार। ओशो कहते हैं कि मेरी आँखों में आँसू आ गए हैं - प्रेम के आँसू, भाव के आँसू, जरा इन्हें पोंछ दो- 'ओम् मणि पद्मे हुम्', 'ओम् मणि पद्मे हुम्'। लैट मी रिपीट- 'ओम् मणि पद्मे हुम्'। ओशो एक ही एक बात कहे जा रहे हैं, सिर्फ ओंकार के गुणगान। यह मत कहो कि ओशो ने राम-नाम श्रवण या ओम् पर जोर नहीं दिया है। ओशो ने तो बहुत जोर दिया है, हमें समझ में नहीं आया। इसलिए हमने उनकी किताब का नाम 'नोट्स ऑफ ए मैड मैन' रख दिया है। और सुनो एक अन्य किताब का शीर्षक है- 'दीपक बारा नाम का'। जब ओशो अंधेरे और प्रकाश की बात करते हैं तो किस दीपक को जलाने की बात करते हैं। जब वे अपनी किताब का शीर्षक रखते हैं- 'पथ के प्रदीप', 'मिट्टी के दिये', 'बिन बाती बिन तेल', 'दिया तले अंधेरा', 'ज्योति से ज्योति जले', यहाँ किस दीपक की तरफ इशारा है? 'दीपक बारा नाम का', पल्टू दास का वचन है -

'दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार।
पलटू अंधियारी मिटी, बाती दीनी बार॥'

'पद घुंघरू बाँध' मीरा की प्रवचनमाला का नाम है। ओशो कहते हैं कि मीरा जिन घुंघरुओं की बात कर रही है वे भीतर बजते हैं, वे भीतर सुने जाते हैं। वे इन कानों से नहीं सुने जाते। मीरा बाहर की पायल के घुंघरुओं की बात नहीं कर रही, वह राम नाम के घुंघरुओं की बात कर रही है। 'पायो जी मैंने राम रतन धन पायो', यह भी ओशो ने अपनी किताब का शीर्षक रखा। अब कृष्ण की भक्त थी मीरा, उसे तो कम से कम नहीं कहना था कि 'पायो जी मैंने राम रतन धन पायो'। वह भी राम का नाम लेती है और ओशो इस वचन को शीर्षक रखते हैं। कृष्ण के हजार गीत मीरा ने कहे, ओशो ने उस पर तो नाम नहीं चुना किताब का, 'राम रतन धन पायो'- इसे शीर्षक चुना। एक अन्य किताब का नाम है- 'न कानों सुना न आँखों देखा'- भीतर जो देखा जाता है वह इन आँखों से नहीं देखा जाता। भीतर जो सुना जाता है वह इन कानों से नहीं सुना जाता। वह अनाहत ध्वनि, वह अनहद ध्वनि भीतर गूँजती है। उसके लिए ओशो ने एक दूसरी किताब का नाम रखा है - 'कानों सुनी सो झूठ सब'। बाहर के कानों से तुमने जो भी सुना, वह सब झूठ है। सत्य क्या है? वह सतनाम जो भीतर सुना जाता है। एक अन्य किताब का नाम है - 'सुनो भई साधो'- कबीर पर हुई प्रवचनमाला। कबीर बार-बार कहते हैं सुनो और साधुओं से कहते हैं साधु अर्थात् जो साधना कर रहे है। कबीर उन पर व्यंग्य और मजाक कर रहे हैं। कह रहे हैं- साधुओं, साधना छोड़ो और सुनो। 'कहत कबीर सुनो भई साधो', ओशो ने शीर्षक चुना अपनी किताब का। 'अनहद में विश्राम'- अनहद का अर्थ वही ओंकार, वही राम-नाम, उसमें विश्राम घटित होता है।

अन्य किताबों के नाम- 'अन्तर्वीणा', 'मौन संगीत', 'जीवन संगीत', 'राम-नाम जान्यो नहीं', ये सब भी उसी समाधि की तरफ इशारा करते हैं। और कुछ किताबों के नाम ऐसे हैं जो प्रक्रान्तर से राम-नाम के ही ऊपर हैं,

उदाहरण के लिए– 'नानक दुखिया सब संसार' यह आधा वचन है इसका, अगला आधा वचन है– 'सोई सुखया जेई नाम अधार'। तो नानक दुखिया सब संसार, यह भी 'नाम' के ऊपर ही हुआ। इसी प्रकार 'लगन मुहूर्त झूठ सब', यह आधा वचन है पल्टू साहब का। पूरा वचन है –

लगन मुहूर्त झूठ सब, और बिगाड़ें काम।
पलटू शुभ दिन शुभ घड़ी, याद पड़े जब नाम।

ठीक इसी प्रकार 'सभै सयाने एक मत'– वह कौन–सी बात है जिस पर सभी सयाने एक मत हैं? वह है 'ओंकार', वह है 'राम नाम', वह है 'अनाहद नाद', वह है समाधि का 'अनहद संगीत'। मत कहो कि ओशोधारा में राम–नाम पर, सतनाम पर जोर है और ओशो ध्यान पर जोर देते हैं। पूछते हो, ऐसा विरोधाभास क्यों। ऐसा विरोधाभास तुम्हारी नासमझी की वजह से है। कहीं कोई विरोधाभास नहीं है। इतनी किताबों के नाम मैंने कहे जो प्रकट रूप से ओंकार से संबंधित हैं। कम से कम 20 किताबें और हैं जो प्रकरान्तर से ओंकार की तरफ ही इशारा है, शीर्षक में ही, और शीर्षक ओशो के सर्वाधिक प्रिय वचन हैं। पूरी किताब का सार–सूत्र आधे वचन में कह दिया– 'एक ओंकार सतनाम'।

आज इतना ही।

धन्यवाद